मरकज़े तसव्वुफ

की तरफ से ये

PDF FILE

का नज़राना जनाब

सूफी नौशाद ग़यासी

की तरफ से

ख़िदमते ख़लक़

के लिये पेश किया जा रहा है।

अन्दर की सलात
बाहर की नमाज़
کُشتگانِ خنجرِ تسلیم را   ہر زماں از غیب جاں دیگر است
وہ، جو تسلیم اور رضا کے خنجر سے شہید ہو جاتے ہیں،
اُنہیں ہر زمانے میں غیب سے نئی جان عطا کی جاتی ہے،
अब अल्लाह मुझसे राज़ी होगा
मेरे सारे गुनाह माफ हो गये
मैं जन्नती हो गया
मरकज़े तसव्वुफ
ख़ानक़ाह शरीफ कादरिया-शुत्तारिया-चिश्तिया
दरगाह सरकार ख्वाजा कुतबुद्दीन बा-इख़्त्यार काकी (क़ु.सि.अ.)
1011-E-First, दरगाह शरीफ, महरौली, नई दिल्ली-110053

درگاہ سرکار خواجہ قطب الدین با اختیار کاکی قدس سرہ العزیز
दरगाह सरकार ख़्वाजा
कुतबुद्दीन बा-इख़्तियार काकी
(कु.सि.अ.)
MARKAZE TASAWWUF
DARGAH SARKAR
Khwaja Qutbuddin Ba-Ikhtiyar Kaki (Q.S.A.)

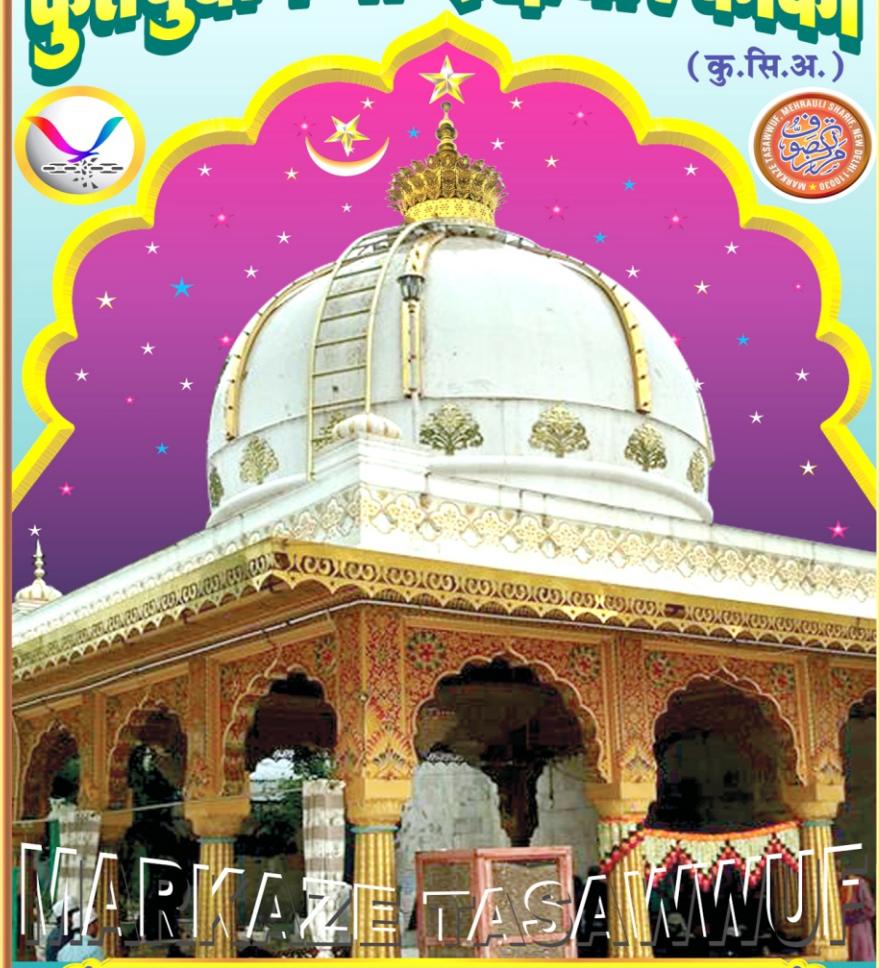

सूफ़ी शमीम क़ादरी शुत्तारी

सूफ़ी नईम क़ादरी शुत्तारी

ये किताब सूफ़ी शमीम और सूफ़ी नईम के तआवुन से मख़लूक़ की ख़िदमत और बेहोशी व लापरवाही दूर करने के मक़सद से छपवाई गई। इस किताब को मुफ़्त में हासिल करने के लिये नीचे दिये गये राब्ते पर ताल्लुक़ क़ायम किया जा सकता हैः

1. **मरकज़े तसव्वुफ़**, दरगाह शरीफ़, महरौली, नई दिल्ली-110030 मोबाइलः 09899943607
2. **सूफ़ी शमीम क़ादरी शुत्तारी** मोबाइलः 9716084184
3. **सूफ़ी नईम क़ादरी शुत्तारी** मोबाइलः 8375998502

दिल से .....रे

तमाम तारीफ़ें इस और उस अल्लाह के लिये हैं जो इस और उस लफ़्ज़ों में नहीं समाता और जिसने अपनी पहचान हासिल करने के मक़सद से इस दुनिया और इंसान को बनाया और अपनी पहचान के लिये सलात क़ायम करने को भी ज़रिया बनाया।

तमाम दुरूद और सलाम सरकारे दो-आलम हज़रत मौहम्मदुर- रसूलुल्लाह स.अ.व. पर और उनकी आल पर और उनके अन्दर के इल्म की विरासत रखने वालों पर के उन्हीं की वजह से हक़ीक़ी इस्लाम क़ायम है, वरना कुछ आलिमों नें तो अपनी समझ को इस तरह हक़ीक़ी इस्लाम पर लाद दिया कि हक़ीक़ी इस्लाम तो छुप गया और रस्म व तक़लीद ही बस बाक़ी रह गयी लेकिन कुछ सच्चे लोग हमेशा ही इस्लाम की हक़ीक़त को समझकर उसकी हिफ़ाज़त में लगे रहे और उसी सुन्नत को क़ायम रखने के लिये कुछ अल्फ़ाज़ आपकी ख़िदमत में पेश किये गये हैं।

सलात जिसका ग़लत तर्जुमा नमाज़ किया गया है और अब आम तौर पर ग़लत नाम नमाज़ से ही पुकारा जा रहा है इस इबादत के लिये ज़ाहिरी और बाहरी हालात के बारे

में तो सैंकड़ों किताबें लिखी जा चुकी हैं लेकिन क़ुरआन शरीफ़ के मुताबिक़ सलात अदा करने से पहले और सलात के क़ायम करने के दौरान हमारी अंदर की हालत क्या हो इस बारे में अब कोई भी किताब ना लिखी जा रही है ना ही छप रही है, इसकी वजह ये है कि सलात क़ायम करते वक़्त हमारी अन्दर की हालत क्या हो इस बारे में तो हम बिल्कुल ही ग़ाफ़िल हो गये हैं बस रस्मी और ज़ाहिरी तौर पर इबादत के नाम पर एक रस्म ही दोहराये जा रहे हैं।

पुराने वक़्त में अल्लाह के वलियों और अल्लाह वालों ने जो किताबें लिखी उनमें इस बात का ख़ास ख़्याल रखा गया कि हमारा बातिन पाक हों, हम अन्दर से पाक हो जायें ताकि हमारी हर इबादत क़ुबूल हो सके, उसी सुन्नत के क़ायम रखने, और अन्दर से पाक होने के मक़सद से ये किताब लिखी गयी है।

अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फ़रमाया कि "अपनी आवाज़ को नबी की आवाज़ से बुलन्द ना करो के कहीं तुम्हारे सारे आमाल बरबाद ना हो जायें।" इस आयत में ये बात भी छुपी हुई है के अपनी हर इबादत में इस बात का ख़्याल रखा जाये कि वो सरकारे दो आलम के तरीक़े पर हो, जो भी अन्दर और बाहर की कैफ़ियत के बारे में फ़रमाया गया है उसका पूरा-पूरा पाबन्द रहा जाये वरना सब बेकार है, बरबाद हो जाने वाला है।

बस इसी हक़ीक़त को बयान करने के लिये ये ग़ुलाम ये गुज़ारिश करता है कि इब्लीस के बहकावे में आकर हम अपने आपको अंदर-बाहर से पाक न समझें बल्कि रहमान के फ़रमान के मुताबिक़ अपने आपको अन्दर-बाहर से पूरा

पाक करें, फिर सलात के क़ायम करने की सभी शर्तों को पूरा करें। पहले दिल को हाज़िर रखना सीखें, ग़ैब की दुनिया में दाख़िल होकर मेराज की तैय्यारी करें, सलात को रस्म न बनायें बल्कि हक़ीक़त में क़ायम करने के मायने को समझकर क़ायम करें।

व बिल्लाहे तौफ़ीक़

ख़ादिमुल फ़ुक़रा बन्दाये मिस्कीन

सूफ़ी ग़यासुद्दीन क़ादरी

शुत्तारी, चिश्ती

मरकज़े तसव्वुफ़, दरगाह शरीफ़,

महरौली, नई दिल्ली-110030

शुरू अल्लाह के नाम, साथ-साथ जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

इस्लाम मज़हब के बुनियादी पाँच काम हैंः

1. **तौहीद**– अल्लाह तआला को एक जान लेना।
2. **नमाज़**– इसका हक़ीक़ी और असली नाम ''सलात'' है और ये अल्लाह तआला की पहचान, दीदार और मुलाक़ात का ज़रिया है।
3. **रोज़ा**– हक़ीक़त का रोज़ा, अल्लाह तआला की याद, जिक्र, फ़िक्र में इस तरह डूब जाने को कहते हैं के खाना-पीना और शहवत याद ही ना आये।
4. **ज़कात**– अल्लाह तआला ने जो कुछ भी दुनिया का माल अता किया है, उसमें से एक ख़ास हिस्सा मिस्कीनों के लिये निकालना जिससे समाज में बराबरी आ सके।
5. **हज**– हज लफ़्ज के असल मायने ''ख़ुद के बदल जाने'' के हैं, अगर इंसान ने हज के बाद अपने आपको अल्लाह तआला का पसन्दीदा बन्दा बनाने के लिये ख़ुद को पूरा-पूरा बदल लिया तब ही वो हक़ीक़त का हाजी बना वरना नहीं।

इस्लाम मज़हब का सबसे पहला और बुनियादी काम तौहीद है यानी अल्लाह तआला को पहचान लेना, जान लेना अगर ये हुआ तब ही बाक़ी के सारे काम करने फ़र्ज़ हैं वरना सब बेकार हैं, अगर तौहीद क़ायम हो गयी तो इन्सान मुसलमान और अगर इन्सान मुसलमान तो नमाज़, रोज़ा, हज ज़कात सब कुछ! वरना बाक़ी के काम करने के कोई मायने मतलब या मक़सद ही नहीं हैं। इसलिए एक

समझदार मुसलमान को सबसे पहले ये ग़ौर और फ़िक्र करनी चाहिए के वो हक़ीक़त में मुसलमान है भी या नहीं, अल्लाह तआला के नज़दीक वो एक सच्चा मुसलमान है या नहीं, आज का मुसलमान तो तौहीद (अल्लाह तआला का एक होना) जाने बिना, पहचाने बिना, अपने आपको मुसलमान समझने की एक ख़तरनाक भूल और ग़लत फ़हमी में है अगर तौहीद है तब ही नमाज़ है, रोज़ा है, हज है, ज़कात है लेकिन अगर तौहीद नहीं है तो बाक़ी के सारे काम कर लेने से इन्सान मुसलमान नहीं हो जाता, तौहीद ऐन ज़रूरी है।

ज़ुबाँ से कह भी दिया ला इलाह तो क्या हासिल
गर दिल तौहीद से भरा नहीं तो कुछ भी नहीं

तौहीद के बारे में ज़्यादा समझने और जानने के लिये ''ईमान और मुसलमान'' किताब में काफ़ी कुछ लिखा गया है, एक हक़ीक़त को जानने की तड़प रखने वाला ''ईमान और मुसलमान'' किताब को पढ़कर काफ़ी इल्म हासिल कर सकता है।

अब हमने ये तो समझ ही लिया और जान भी गये कि तौहीद (अल्लाह तआला का एक होना) को जान लेने, पहचान लेने के बिना सबकुछ बेकार है और क़ुबूल भी नहीं होगा, लेकिन बहुत अफ़सोस की बात है के आज के इस ज़माने में बाक़ी के सारे कामों को तो रस्मी तौर पर किया जा रहा है लेकिन सबसे ख़ास काम को ही इंसान ने पीछे कर दिया है ये कुफ़्र है क्योंकि कुफ़्र के मायने, हक़ीक़त के मायने छुपाने या ढांप देने के होते हैं और ये

कुफ़्र लफ़्ज़ सबसे पहले हज़रत ईसा अ.स. की क़ौम के लिये इस्तेमाल हुआ। अब तो बिना सोचे समझे काफ़िर कहने का फ़ैशन हो गया है, बस जो तुम्हारी समझ को ना माने उसे काफ़िर कह दो अब जो भी इंसान तौहीद को भूल रहा है और बाक़ी के काम बड़े जोश से कर रहा है तो वो तौहीद को छुपा रहा है या नहीं? और अगर इंसान के बाक़ी के सब कामों से तौहीद छुप रही है तो इंसान हक़ीक़त में कुफ़्र की तरफ़ जा रहा है या नहीं? समझ रखने वालों के लिये इसमें समझ है।

मज़हबे-इस्लाम का दूसरा काम सलात है जिसका नाम बदलकर 'नमाज़' कर दिया गया और यही नाम नासमझी में मशहूर हो गया और इंसान तो है ही माहिर नक़ल करने में, बस एक ने दूसरे की नक़ल की और उसकी तीसरे ने। बस इसी तरह सलात का नाम बदलकर नमाज़ हो गया। कमाल तो ये है जो इबादत की जा रही है उसका नाम जो है, वो क्यों है? कहाँ से आया है? इस बारे में हम ज़रा भी ग़ौर और फ़िक्र नहीं करते!

क्योंकि ये छोटी सी किताब हक़ीक़त की सलात के बारे में है, इसलिये हम सबसे पहले सलात जिसका नाम बदलकर नमाज़ कर दिया गया है तो हम सबसे पहले लफ़्ज़ नमाज़ के बारे में जानने की कोशिश करते हैं के नमाज़ लफ़्ज़ किस ज़बान में है? कहाँ से और कब इस्लाम में दाख़िल हुआ? इससे इस्लाम को क्या नुक़सान हुआ? इसके बाद हम सलात की हक़ीक़त को समझने की कोशिश करेंगे के सलात क्यों फ़र्ज़ की गयी? इसकी अदायगी का क्या तरीक़ा है? अदायगी के दौरान अन्दर और बाहर की क्या

हालत होनी चाहिए? कब सलात क़ुबूल होती है? इसके क़ुबूल होने की क्या शर्तें हैं? आइये हम मिलकर ये और बाक़ी भी बहुत कुछ जानने के सफ़र में साथ चलते हैं।

नमाज़ लफ़्ज़ की हक़ीक़तः आप में से कुछ लोगों को ये जानकर बड़ी हैरानी होगी कि अल्लाह की किताब में, पूरी किताब में नमाज़ लफ़्ज़ ही नहीं है, सलात लफ़्ज़ है, क्योंकि अल्लाह की किताब अरबी ज़बान में है और सलात अरबी ज़बान का अल्फ़ाज़ है फिर ये नमाज़ लफ़्ज़ कहाँ से आया?

नमाज़ फ़ारसी ज़बान जो कि ईरान की ज़बान है उसका अल्फ़ाज़ है, ये तो बहुत लोग कहते हैं कि फ़ारसी ज़बान में ये अल्फ़ाज़ इबरानी ज़बान से आया। लेकिन अगर उनसे ये पूछा जाये के इबरानी ज़बान कहाँ से आई? कहाँ और कब बोली जाती थी? तो वो चुप हो जाते हैं, बहरहाल ईरान के रहने वाले लोग आम तौर पर पारसी मज़हब के मानने वाले थे, उनकी आसमानी किताब का नाम अवेस्ता है और उनके पैग़म्बर का नाम जरथुस्त्रु अ.स. था और पारसी लोग आग की पूजा करते हैं इसलिए उन्हें आतिश परस्त भी कहा जाता है।

मज़हबे इस्लाम तो जब से ये दुनिया बनी है तब से मौजूद है लेकिन इस्लाम नाम लफ़्ज़ सरकारे दो-आलम के साथ आया, जैसे सूरज तो तब भी मौजूद था, जब सूरज का नाम सूरज नहीं था, नाम तो बाद मे रखा जाता है पहले वो चीज़ और हक़ीक़त मौजूद होती है।

बहरहाल इस्लाम लफ़्ज़ और सरकारे दो-आलम से पहले आतिश परस्त लोग आग की पूजा करते हुए अपनी

आसमानी किताब अवेस्ता को पढ़ते हुए आग के आगे जो सजदा करते थे उस इबादत का नाम उन्होंने नमाज़ रखा था उस नमाज़ में– इबादत में दिन में पाँच बार हाथ पाँव भी धोये जाते थे सर भी ढका जाता था लेकिन उस नमाज़ में रुकू नहीं होता था, उनकी ये नमाज़ सैंकड़ों सालों से चली आ रही थी और अब भी जहाँ-जहाँ आतिश परस्त लोग हैं वो ये इबादत नमाज़ पढ़ते हैं।

अब जब इस्लाम ईरान तक पहुँचा तो अलग मुल्क, अलग ज़बान की वजह से कुछ लोगों ने सलात लफ़्ज़ बदल कर, नमाज़ कर दिया। बस ये एक बहुत बड़ी ग़लती जान बूझकर या अन्जाने में की गयी, इससे आने वाले वक़्त में और अब भी एक बहुत बड़ा नुक़सान हुआ जो पूरी क़ौम का था। आइये! अब हम मिलकर उस नुक़सान के बारे में समझते हैं।

1. जब अल्लाह तआला ने सरकारे दो-आलम के ज़रिये, अपनी किताब के ज़रिये हमें ये ख़बर पहुँचा दी के तुम्हारी ख़ास इबादत का नाम सलात है तो दुनिया के बड़े से बड़े आलिम को ये हक़ हासिल नहीं है कि इस्लाम की ख़ास इबादत का नाम बदले, लेकिन अल्लाह की किताब के हुक्म को सरासर झुठलाकर सलात का नाम नमाज़ क्यों किया गया?

2. जिस तरह सलात और नमाज़ अलग-अलग अल्फ़ाज़ हैं उसी तरह सलात और नमाज़ की रूह और असलियत और हक़ीक़त भी अलग-अलग है। सलात लफ़्ज़ को बदलने से सलात की रूह ख़त्म हो गयी और उसकी जगह ज़ाहिरी रस्मी नमाज़ ने ले ली, इससे मुसलमानों का सबसे बड़ा

नुक़सान ये हुआ के ये क़ौम अल्लाह तआला की किताब के हुक्मों के मुताबिक़ तो सलात अदा करने, क़ायम करने से बच गयी, हट गयी। बस ज़ाहिरी तौर पर से नमाज़ पढ़ने लगी।

3. जब कलमा हम उस तरह पढ़ते हैं जिस तरह सरकारे दो-आलम ने फ़रमाया, रोज़े की नियत, इफ़्तार की नियत, हज की नियत, अज़ान, तकबीर, सब और काम भी अल्लाह की किताब और सरकारे दो-आलम के हुक्म के मुताबिक़, सुन्नत समझकर करते हैं तो पहले जो ग़लती हो गयी उसे अब भी क्यों दोहराये जा रहे हैं। सलात को सलात ही कहना शुरू करते हैं ये ही बेहतर है।

4. जब हम नमाज़ लफ़्ज़ के असली नाम सलात को सलात कहना शुरू करेंगे तो एक बेकार रस्म-बिदअत से भी बच सकेंगे और साथ-साथ हम सलात को उसके असली नाम सलात से पुकार कर एक ख़ास सुन्नत भी क़ायम कर सकेंगे।

5. हर इबादत की एक रूह होती है और एक बदन सलात की रूह है अल्लाह की किताब के हुक्मों के मुताबिक़ अपने आपको पूरी तरह अन्दर से पाक करके, सलात क़ायम करने की सारी अन्दर और बाहर की शर्तों के मुताबिक़ सलात को क़ायम करना, ये याद रहे के कोई भी इबादत तब ही क़ुबूल होती है जब उसके लिये जो उसूल और क़ानून और शर्तें बना दी गई हैं उसको समझकर अमल में लाकर उन शर्तों को पूरा करते हुए वो इबादत की जाए तब ही। बस तब ही वो इबादत क़ुबूल होती है और तब ही तो अल्लाह सवाब अता करेगा जब वो इबादत

क़ुबूल होगी और अगर इबादत की शर्तें पूरी नहीं की तो इबादत क़ुबूल नहीं। इबादत क़ुबूल नहीं तो सवाब कैसा और क्यों। इसलिये अल्लाह तआला ने फ़रमा दिया के "उनकी सलात गन्दे कपड़े में लपेट कर उनके मुँह पर मार दी जायेगी।"

झूठ कहते हैं वो लोग जो कहते हैं बस पढ़ते रहो अल्लाह क़ुबूल करने वाला है, बेशक वो क़ुबूल करने वाला है। वो क़ुबूल करने वाला भी है और ना-क़ुबूल करने वाला कि अगर वो इंसान के सर पटकने और कसरत को ही क़ुबूल करने वाला होता तो ऊपर दी गई शर्त ना होती इसलिये ये ज़रूरी है के सलात क़ायम करने के लिये जो शर्तें हैं उनको समझ कर, अमल में लाकर उन शर्तों के साथ सलात क़ायम की जाये।

सलात की रूह है सलात की अन्दर की मुक़र्रर की हुई शर्तों को पूरा करना और सलात का बदन है सलात की बाहर की शर्तों को पूरा करना बस जैसे इंसान का बदन और रूह है। ये हम सब जानते हैं के बदन गल जाना है ख़त्म हो जाना है और रूह बाकी रहनी है तो हम सब मिलकर सलात की रूह यानी अंदर की शर्तों और पाकी पर ध्यान क्यों नहीं देते? क्यों हम सिर्फ़ सलात के बदन, सिर्फ़ ज़ाहिरी शर्तों को पूरा करते हैं वो भी आधी अधूरी क्यों जमाअत के दौरान सलात में आगे खड़ा रहने वाला शख़्स हमें सलात की रूह के बारे में नहीं बताता?

6. कोई भी थोड़ा सा समझदार मुसलमान इस बात को बहुत अच्छी तरह जानता है के मक्का की फ़तह से पहले जिन लोगों ने सरकारे दो आलम के हाथ पर बैत होकर

उनके रसूल होने का इक़रार किया था वो दिल से सरकारे दो-आलम के साथ थे उनका यक़ीन पक्का और सच्चा था लेकिन मक्का के फ़तह होने के बाद जो लोग सरकारे दो आलम के हाथ पर ज़ाहिरी तौर पर बैत हुए और इस्लाम में दाख़िल हुए उनमें से ज़्यादातर लोगों के दिलों में बुग्ज़ और निफ़ाक़, फ़र्क़ भरा ही रहा सिर्फ़ देखने में ही उन्होंने इस्लाम क़ुबूल किया।

इस्लाम क़ुबूल करने के बाद भी ये लोग अन्दर ही अन्दर इस्लाम से बग़ावत करने वाले बने रहे और अन्दर ही अन्दर अपनी औलादों को भी ये ही समझाते रहे, अब क्योंकि इस्लाम बढ़ रहा था तो ये ज़ाहिरी तौर पर तो कुछ कर ही नहीं सकते थे। इसलिए ये अन्दर ही अन्दर इस्लाम की हक़ीक़त को बदलने-ख़राब करने में लग गये।

अब जब 651 सन् में इस्लाम ईरान में दाख़िल हुआ तो वहाँ आतिश परस्तों की इबादत का नाम नमाज़ था ये ख़्यालात जो इस्लाम की हक़ीक़त को ख़राब करने के लिये फैलाये गये थे, उन ख़्यालात के ज़रिये ये फ़ैसला लिया गया के सलात का नाम नमाज़ कर दिया जाए। अबू सुफ़ियान से लेकर मुआविया, यज़ीद, यज़ीद दोयम-मरवान यानी जितने भी वक़्त बनू उमय्या की ख़िलाफ़त का वक़्त रहा उस वक़्त में रस्मो-झूठी हदीसों और भी कई तरीक़ों से इस्लाम की हक़ीक़त को अन्दर से ख़राब करने की हर तरीक़े से कोशिश की गयी और इस्लाम के नाम पर ही की गयी। नतीजे में ये रस्मो-रिवाज इतने ज़्यादा फैल गये के इस्लाम की हक़ीक़त को वापस लाना मुश्किल हो गया।

इस्लाम को सबसे ज़्यादा नुक़सान सरकारे दो-आलम

और उनकी आल से जो बुग़्ज़ और निफ़ाक़ रखते थे, उनसे हुआ, तारीफ़ करते रहते थे, तारीफ़ करते रहते हैं लेकिन अन्दर से सरकारे दो-आलम के पैग़ाम को बिल्कुल ही बिगाड़ दिया। वो ही रस्मी इस्लाम अब तक इतना फैल चुका है के बस– जो लोग हक़ीक़त जानते हैं वो ही जानते हैं बाक़ी ज़्यादातर लोग रस्मी इस्लाम को ही हक़ीक़त का इस्लाम समझते हैं।

अब इतनी बात से ये साबित हुआ के–

1. नमाज़ लफ़्ज़ आतिश परस्तों का है।
2. आतिश परस्त लोग आग की पूजा करते हुए अपनी किताब अवेस्ता को जो पढ़ते थे, उसे वो लोग नमाज़ कहते थे।
3. इस्लाम की हक़ीक़त को ख़राब करने के लिये सलात का नाम बदलकर नमाज़ किया गया।
4. सलात का नाम नमाज़ बदलने से सलात की रूह यानी अन्दर की शर्तें ख़त्म हो गयी।
5. जो लोग सलात को नमाज़ कहते हैं वो हक़ीक़त से बेख़बर हैं।
6. जो लोग अन्जाने में, नासमझी में, सलात को नमाज़ कहते हैं, वो एक हक़ीक़त को छुपाकर एक ग़लत रस्म को बढ़ावा देने में मददगार बन रहे हैं।
7. अब समझदार लोगों को चाहिए के हक़ीक़त को लोगों के सामने लायें सलात को नमाज़ ना कहकर सलात ही कहें, इससे सुन्नत भी क़ायम होगी, सलात की रूह-असलियत की तरफ़ भी आम लोगों की तवज्जोह जायेगी और हम सब हक़ीक़त की सलात

को उसकी रूह-असलियत के साथ क़ायम कर सकेंगे।

इतना सबकुछ जान लेने के बाद, इस ग़ुलाम के अपने ज़ाती ख़्याल के मुताबिक़ अब सिर्फ़ यज़ीदी मुसलमान ही सलात को नमाज़ कहेंगे। हक़ीक़त के मोहम्मदी मुसलमान तो सलात को सलात ही कहेंगे।

एक ज़रूरी बात और भी है जब भी हमें कोई हक़ीक़त पता चलती है तो वो हमारे लिये नयी बात होती है और हम उसे झूठ समझते हैं और सच्चाई जानने के लिये मस्जिद के मौलवी या ज़ाहिरी आलिम से सवाल करते हैं अब उसे बेचारे को जो पढ़ाया गया, या उसने जो पढ़ा या रटा इसके अलावा तो कुछ पता होता नहीं। वो ख़ुद रस्मी तक़लीदी इल्म को लादे हुए हैं। अब अगर वो जवाब ना दें तो उसकी शख़्सियत पर आँच आयेगी। हक़ीक़त उसे पता नहीं तो वो बेचारा उलटे-सीधी बातों में उलझाकर और भी ज़्यादा गुमराह कर देता है। उसे तो बेचारे को ये भी नहीं पता के नमाज़ लफ़्ज़ आया कहाँ से? उसे तो बस ज़ाहिरी नमाज़ का पता है। सलात की रूह का कुछ पता ही नहीं। लेकिन सब ऐसे नहीं हैं।

कुछ-बहुत कम आलिम ऐसे भी गुज़रे हैं जिन्होंने सलात की रूह और जिस्म दोनों को अल्लाह की किताब से समझा उस पर अमल किया और उस तरह से सलात क़ायम की जिस तरह से अल्लाह और उसके रसूल की मर्ज़ी और मन्शा थी ये सही तरीक़े से सलात क़ायम करना हमारी ही बेहतरी के लिये हैं, लेकिन इस वक़्त में सलात किस तरह पढ़ी जा रही है ये हम सब जानते हैं तब ही तो सलात में से हमें वो लुत्फ़-चाशनी, मिठास नहीं मिल पाती।

अब सवाल ये पैदा होता है कि हम और क्या सीखें, क्या करें, जिससे हम हक़ीक़त की सलात क़ायम कर सकें, ऐसी सलात जो अल्लाह तआला की बारगाह में क़ुबूल होने के क़ाबिल हो। आईये! हम मिलकर इस बारे में एक लम्बी बातचीत करते हैं और हक़ीक़त को जानने की कोशिश करते हैं और इसके लिये अल्लाह तआला ने अपनी किताब में और सरकार दो-आलम ने जो फ़रमाया, उससे मदद लेते हैं साथ ही साथ हम अल्लाह तआला के वलियों ने जो सलात के बारे में फ़रमाया वो भी समझेंगे ये समझ लेने और जान लेने से ही हम हक़ीक़त की सलात को क़ायम कर सकेंगे।

इसके लिये हमें सबसे पहला काम ये करना होगा के हम सलात को नमाज़ कहना छोड़कर सलात को सलात कहना ही शुरू करें। नमाज़ लफ़्ज़ बहुत मशहूर है, हमें सलात को नमाज़ कहने की आदत हो गयी है, ना चाहते हुए भी ज़बान से लफ़्ज़ नमाज़ ही निकलेगा, इसलिए हमें होश के साथ सलात कहना पड़ेगा। इस बारे में सलात में आगे रहने वाले आलिमों से भी ये ग़ुलाम दरख़्वास्त करता है के वो इस हक़ीक़त को आम लोगों तक पहुंचायें इससे क्या फ़ायदा होगा ये हम पहले पढ़ चुके हैं।

सरकारे दो-आलम की मशहूर हदीस है जिसे दुनिया का कोई आलिम मना नहीं कर सकता।

ला सलाता इल्ला बिल हुज़ूरे क़ल्ब

नहीं सलात बिना हाज़िर रहे हक़ीक़त के दिल के

यानी— **हक़ीक़त का दिल हाज़िर रहे बिना सलात नहीं है।**

दिल और हक़ीक़त के दिल में क्या फ़र्क़ है इस बारे में जानने के लिये सरकार ग़रीब नवाज़ ने जो किताब लिखी है, **असरारे हक़ीक़ी** वो पढ़ना और समझना बेहतर समझना होगा।

बहरहाल अब जब हमने ये फ़रमान जान लिया कि ''हक़ीक़त का दिल हाज़िर रहे बिना सलात नहीं है'' तो इसका मतलब ये हुआ के सलात अदा करने के दौरान कोई भी दूसरा ख़्याल ना आये और हक़ीक़त का दिल पूरा-पूरा सलात में ही रहे लेकिन ऐसा नहीं हो पा रहा है क्यों? अल्लाहो-अकबर कहते ही ज़बान अलग हो जाती है, पढ़ने लगती है और ख़्यालात ना जाने कहाँ-कहाँ घूमते रहते हैं, ये हालत सरकारे दो-आलम के फ़रमान के बिल्कुल ख़िलाफ़ है ऐसा क्यों है? क्यों हम सलात के दौरान ख़्यालात से नहीं बच पाते?

इसकी पहली वजह तो ये है के सलात में हम जो भी पढ़ते या सुनते हैं वो समझते ही नहीं बस कम अक़्लों की तरह दोहराये जाते हैं, अगर समझेंगे तो दिल हाज़िर रहने में मदद मिलेगी तो हमें हक़ीक़त की सलात क़ायम करने के लिये ये करना होगा कि हम जो पढ़ें या सुनें उसके पूरे-पूरे मायने भी समझें।

एक बात और समझाने के क़ाबिल है जब तक ख़्यालात हैं दिल हाज़िर नहीं रह सकता और अगर दिल हाज़िर नहीं है तो सलात ही नहीं है, ये हदीस हम पहले ही पढ़ चुके है। तो जब सलात अदा ही नहीं हुई तो फ़र्ज़ कैसे पूरा हुआ? इबादत कैसे पूरी हुई? सवाब कैसे और क्यों मिलेगा?

सलात के दौरान ख़्यालात ना आयें इसका क्या तरीक़ा

है? इसका एक तरीक़ा तो ग़ुलाम पहले बयान कर चुका है, दूसरा तरीक़ा ये है के अपने अन्दर यकसुई पैदा करना, एक ही तरफ़ तवज्जोह का रहना, हमेशा अल्लाह तआला की याद में रहना और सबसे बड़ी बात है ख़्यालात को अपने क़ाबू में रखना, यानी हम जब चाहें, जो चाहें वो ही ख़्यालात आयें जो ना चाहें वो ख़्यालात ना आयें इसका तरीक़ा सीखना ही होगा वरना अगर सरकारे दो-आलम की फ़रमाई हुई हदीस पर अमल नहीं हुआ तो सलात अदा ही नहीं हुई, बस सर पटकते रहो।

अब हम सरकारे दो-आलम की दूसरी ख़ास हदीस पर ग़ौर करते हैं, हमें ये भी समझना बेहतर रहेगा के अल्लाह तआला ने अपनी किताब में और सरकारे दो-आलम ने सलात की रूह-असलियत के बारे में जो फ़रमाया उसका तो हमारे सामने बयान ही नहीं होता, बस बाहर-बाहर की बातें दोहरा दी जाती है हमे समझना भी होगा और जाग कर होश में आना होगा।

सही हदीस हैः

अस-सलातो मिराजुल - मौमेनीन।

सलात मेराज है, मोमिन के लिये।

सलात मोमिन की मेराज है।

मोमिन उसे कहते हैं जिसके पास पूरा-पूरा ईमान हो और ईमान, यक़ीन-पूरे-पूरे यक़ीन को कहते हैं। ईमान को जानने के लिये यक़ीन को जानने के लिये अल्लाह की किताब में सूरह तकासुर, सूरह नम्बर 102 पारा तीस पढ़ना, समझना बेहतर रहेगा।

मेराज के बारे में आम लोग जानते ही हैं के सरकारे

दो-आलम को मेराज हुई और अल्लाह तआला ने सरकारे दो-आलम को मुलाक़ात के लिये बुलाया। मेराज के मायने होते हैं, **मुलाक़ात – ऊँचा उठना।**

अब सवाल ये पैदा होता है के जब सरकारे दो-आलम ने ये फ़रमा दिया के सलात मोमिन की मेराज है, यानी सलात ईमान वाले के लिये। पूरे-पूरे यक़ीन वाले के लिये अल्लाह तआला से मुलाक़ात है तो फिर वो लोग जो 20-20, 25-25 सालों से सलात पढ़ रहे हैं, उनकी मुलाक़ात अल्लाह से क्यों नहीं हुई?

इस हदीस शरीफ़ में दो बातें फ़रमाई गयी हैं, ईमान वाला और सही तरीक़े से सलात अदा करने वाला होना, अब साबित ये हुआ के एक लम्बे वक़्त तक सलात पढ़ने के बाद भी अगर अल्लाह से मुलाक़ात नहीं हुई तो उसका ना तो ईमान हक़्क़ुल यक़ीन है और ना ही वो सलात को रूह के साथ अदा करने वाला है और मआज़-अल्लाह अल्लाह के रसूल का फ़रमान तो झूठ हो नहीं सकता।

मक़सद सिर्फ़ ये है कि ईमान यक़ीन हक़्क़ुल यक़ीन पूरा-पूरा हो और सलात अपनी अन्दर और बाहर की शर्तों को पूरा करते हुए अदा की जाये तो सलात के दौरान, इसी दुनिया में ही अल्लाह तआला से मुलाक़ात हो सकती है, मरने के बाद नहीं, क्योंकि हदीस शरीफ़ में लफ़्ज़ (हैं) इस्तेमाल हुआ है, मरने के बाद मुलाक़ात का ज़िक्र नहीं है मरने के बाद तो सभी बारगाहे इज़्ज़त में पेश किए जाएंगे। ज़िन्दगी का मक़सद तो तभी पूरा होगा, जब इस दुनिया में रहते हुए ही अल्लाह तआला से मुलाक़ात कर लें, वरना अल्लाह तआला ये क्यों फ़रमाता के "मैं एक छुपा हुआ

ख़ज़ाना था, बस मैंने चाहा के दुनिया मुझे जाने, इसलिए मैंने दुनिया बनाई'' इस हदीसे क़ुदसी से ये साबित होता है के अल्लाह तआला ने ये दुनिया इसलिए बनाई के लोग उसे जानें लेकिन सब काम हो रहे हैं बस उसे जानने की कोशिश नहीं हो रही है इसे क्या कहा जायेगा।

एक बात और दिल से समझने के क़ाबिल है के मेराज के मायने एक पहलु से ग़ैब की दुनिया में दाख़िल होना है। सरकारे दो-आलम भी पहले ग़ैब की दुनिया में दाख़िल हुए और फिर उन्होंने कलामे अल्लाह के मुताबिक़ अल्लाह तआला की सबसे बड़ी निशानी को देखा।

अब तक हमने सरकारे दो-आलम की दो हदीसों से ये समझ लिया के सलात अपनी हक़ीक़त, असलियत और रूह के साथ ही अदा करना क़ीमती और ज़रूरी है, अब हम अल्लाह की किताब के ज़रिये सलात की अहमियत उसकी हक़ीक़त के साथ, कितनी ज़रूरी है ये समझाने की कोशिश करते हैं। आयत है:

''ऐ मेरे रब! मुझको और मेरी नस्ल को सलात क़ायम करने वाला बना।'' (सूरह इब्राहीम-14, आयत 40)

अल्लाह की किताब की ये आयत सरकारे दो-आलम से पहले के पैग़म्बर हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की दुआ है, नाराज़ हुए बिना ये समझना बेहतर रहेगा के जब अल्लाह का पैग़ाम लाने वाला ये दुआ कर रहा है के मुझे और मेरी नस्ल को सलात क़ायम करने वाला बना तो सलात की अहमियत कितनी होगी, लेकिन क्या पैग़म्बर ने अपने लिये और अपनी नस्ल के लिये इसी सलात की दुआ की थी जो आजकल हम पढ़ रहे हैं या फिर वो कोई और ही

सलात है जिसमें दिल भी हाज़िर रहता है और ग़ैब की दुनिया में दाख़िल होकर अल्लाह तआला की पहचान भी हो जाती है।

"मोमिन को जब सलात के ज़रिये मेराज होती है तो उसे अल्लाह तआला की पहचान हो जाती है।"

इसीलिए एक आरिफ़ ने फ़रमाया हैः

"अगर मेराज नहीं, पहचान नहीं तो सलात ही नहीं।"

सुरह बक़रा नम्बर 2 आयत 3 में लफ़्ज़ हैः

"युक़ीमूनस सलाता" इसके मायने सलात क़ायम करने के हैं, ऊपर दी हुई आयत और दुआ में भी ज़िक्रे सलात क़ायम करने का है। क़ायम करने के मायने "हर कमी और टेढ़ापन दूर करने के हैं, यानी सलात के अदा करने में जो भी कमी है या टेढ़ापन है पहले वो दूर किया जाये, दुनिया की कोई भी इबादत या काम हो अगर हम वो कमी रहते हुए करते रहते हैं तो वो कमी बढ़ती जाती है और वो इबादत या काम बेहतरीन अंजाम नहीं देता, अब वो लोग जिन्हें क़ायम लफ़्ज़ के मायने भी नहीं पता, कलामे अल्लाह को समझा नहीं, वो ये कहते हैं कि इबादत को कमी के साथ, ग़लत तरीक़े से करते रहो, अपने आप सही हो जायेगी, ये कैसे मुमकिन है?

वो लोग सोच-समझकर नहीं बोलते, बस सुनी हुई बातों को ही आगे बताते रहते हैं और ग़लत बात बताकर, सवाब, अच्छे बदले की उम्मीद करते हैं, क्या ये सही है?

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत नम्बर 42:

"सलात क़ायम करो, ज़कात अदा करते रहो और रूकू

करने वालों के साथ रूकू करते रहो।''

इस आयत में भी क़ायम करने का ज़िक्र है और क़ायम करने के मायने हर कमी और टेढ़ापन पहले ही दूर कर लेने के हैं। ये हक़ीक़त हम पहले ही समझ चुके हैं दूसरा ज़रूरी ज़िक्र रूकू का है, ये पहले ही बताया जा चुका है के यहूदियों की नमाज़ में रूकू नहीं होता था, रूकू के मायने, बदन को बारगाहे रब्बुल इज़्ज़त को सौंप देना है, उसके हवाले कर देना है।

ये ख़्याल रहे के सलात इंसान और अल्लाह तआला के बीच ताल्लुक़ का नाम है। ज़कात इंसान और इंसान के बीच ताल्लुक़ का नाम है और रूकू बारीए तआला को अपना बदन सौंप देने का नाम है। अब क्या हम रूकू के दौरान अपने बदन को अल्लाह तआला के हवाले करते हैं? हमें करना ही चाहिए!

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत नम्बर 44

''सबर और सलात के ज़रिये मदद माँगो।''

सबर लफ़्ज़ क़ीमती है और तौहीद (अल्लाह का एक होना) जानने की बुनियाद है। अल्लाह तआला का एक होना जानने के लिये ये ज़रूरी है के इस बात का पूरा-पूरा यक़ीन किया जाये के अल्लाह तआला इंसाफ़ ही करने वाला है और जब ये पूरा-पूरा यक़ीन हो गया के अल्लाह तआला इंसाफ़ ही करने वाला है तो फिर शिकायत कैसी? ख़्वाहिश कैसी? लालच, हसद, हिरस, बुग़्ज़, निफ़ाक़ कैसा? अब जो वो करे वो ही बेहतरीन! इंसान की अंदर की इस हालत का नाम सबर है लेकिन बदलते वक़्त में सबर लफ़्ज़ के मायने ही बदल गये हैं। जब बारीये तआला ने फ़रमा

दिया के सबर और सलात को ज़रिया बनाकर मदद मांगो, यानी उसकी मदद मिलेगी लेकिन सबर हक़ीक़त का सबर तो हो। सलात हक़ीक़त की सलात तो हो, तब ही तो!

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत नम्बर 82 और 109 में भी सलात क़ायम करने को ही फ़रमाया गया है। समझदार लोगों को जो क़ायम करने के सही मायने समझ गये हैं वो ये भी समझ गये होंगे के बार-बार क़ायम करने के ज़िक्र में क्या इशारा है।

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत 153

''ईमान वालो सबर और सलात के ज़रिये मदद मांगो, और अल्लाह सबर करने वालों के साथ है।''

इस आयत के पहले हिस्से का बयान पहले ही किया जा चुका है, अब दूसरे हिस्से ''अल्लाह सबर करने वालों के साथ है'' इसको समझते हैं। अल्लाह तो सबके साथ है ये बात भी अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फ़रमा दी है। जब ये फ़रमाया के ''तुम जहाँ कहीं भी हो, मैं तुम्हारे साथ हूँ।'' मैं तुम्हारी शहे-रग से भी क़रीब हूँ'' तो अल्लाह तआला सबके साथ है। तो यहाँ ''अल्लाह सबर करने वालों के साथ है'' ये ख़ास तौर पर फ़रमाने का क्या मक़सद है? यहाँ मक़सद ये है के वो तो सबके साथ है लेकिन जो सबर के हक़ीक़त के मायने समझकर सबर करते हैं उन पर अल्लाह तआला का साथ होना ज़ाहिर और साबित हो जाता है, बाक़ी लोगों का सिर्फ़ मानना रह जाता है।

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत 177

''नेकी ये नहीं है के अपना रुख़ मशरिक़ या मग़रिब की

तरफ़ कर लो बल्कि हक़ीक़त में नेकी ये है के अल्लाह पर, आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर, नबियों पर पूरा-पूरा यक़ीन करें और ख़ुदा की मोहब्बत में अपना माल क़रीबी लोगों को, यतीमों को, मिस्कीनों को, ग़रीब मुसाफ़िरों को, सवाल करने वालों को, ग़ुलामों को आज़ाद कराने के लिये दें। सलात क़ायम करें.....।''

कुछ लोगों का ये ख़्याल है के बस मग़रिब की तरफ़ रुख़ करके दो सजदे कर लो, बस हो गया सब काम। ऐसे लोगों के लिये अल्लाह तआला ने फ़रमाया है के बस इससे काम नहीं चलेगा, सबसे पहले तौहीद को समझकर, जान कर पूरा-पूरा यक़ीन करना ज़रूरी है, और फिर और नेक कामों का ज़िक्र किया गया है और इसके बाद ''सलात क़ायम करो'' फ़रमाकर ये भी इशारा कर फ़रमा दिया के मग़रिब की तरफ़ रुख़ करना और सलात क़ायम करना ये दोनों अलग-अलग हालत और कैफ़ियत और काम के अलग-अलग तरीक़े हैं। पहले तरीक़े को नेकी नहीं है क़रार दिया ये आयत बहुत ज़्यादा ग़ौर करने, फ़िक्र करने के लिये है।

सूरह बक़रा नम्बर 2, आयत नम्बर 238

''अपनी सब सलातों की हिफ़ाज़त करो, ख़ास तौर से बीच की सलात की।''

ये आयत हमें बता रही है कि हमने अपनी हर सलात की हिफ़ाज़त करनी है, इसके मायने ये हुए के हमें अपनी सलात को अन्दर और बाहर से नुक़सान देने वाली हर चीज़ से बचाना है। मतलब फिर वो ही आया के सिर्फ़ रस्मी तौर पर सलात नहीं पढ़नी है, बल्कि सलात क़ायम करनी है। हमारा अन्दर क्या हाल हो ये जानना है, अगर

ग़लत है तो सही करना है, फिर बाहर का हाल पूरा-पूरा सही करना है, तब ही हक़ीक़त की सलात अदा हो सकेगी और हम सलात की हिफ़ाज़त कर सकेंगे, और तभी हम अल्लाह के फ़रमान को मानने में सही साबित होंगे, वरना झूठे कहलायेंगे।

बीच की सलात के ज़ाहिरी मायने 'असर' की सलात के लिये जाते हैं लेकिन तसव्वुफ़ और तरीक़त के मुताबिक़ इसके कुछ ओर ही मायने हैं। तसव्वुफ़ के मुताबिक़ ''बीच'' सिर्फ़ गोल चीज़ का हो सकता है और ये बीच की, दरमियान की, सलात बहुत ज़्यादा क़ीमती है, इसे सिर्फ़ इल्मे बातिन, अन्दर के इल्म के माहिर जानते हैं, ये सलात की सबसे पहले अल्लाह तआला की पहचान कराती है। तमाम अहले सिलसिला और मुरीदों से गुज़ारिश है के वो अपने पीरो-मुर्शिद से **''सलाते वुस्ता''** बीच की, दरमियान की सलात के बारे में जानने की कोशिश करें, जिससे उनका मुरीद होने का मक़सद पूरा हो सके। आमीन!

''सलात क़ायम करो'' इसमें क़ायम करने के एक और मायने भी हैं। और वो मायने हैं ''बरक़रार'' यानी जब हम हक़ीक़त में अन्दर और बाहर की सब शर्तों को पूरा करते हुए हर कमी को पहले दूर करके सलात अदा करते हैं तो सलात से जो कुछ भी अता होता है जैसे ग़ैब की दुनिया में दाख़िल हो जाना और अल्लाह तआला की पहचान हो जाना और अल्लाह तआला की पहचान होना उसको बरक़रार रखना, यानी वो हालत हमेशा रहे इसका हुक्म दिया गया है, समझकर, समझना और अमल करना समझदारों की निशानी है और ज़बानी तौर पर बिना जाने समझे,

बोलना एक समझदार की निशानी नहीं है।

आयत सूरह अल-माऊन 108, आयत 4,5,6, पारा 30

''हलाकत, ख़राबी और सख़्ती है उन सलात पढ़ने वालों के लिये जो अपनी सलात की हक़ीक़त, मायने और असलियत से बेख़बर हैं, सिर्फ़ दिखाने के लिये पढ़ते हैं।''

अपने साथ थोड़ा सा इंसाफ तो करो, अपने लिये तो ईमानदारी से काम लो, अल्लाह की किताब की इस आयत को तराज़ू के एक पलड़े पर रखो और अपनी सलात को दूसरे पलड़े पर फिर देखो।

ये आयत साफ़-साफ़ इशारा कर रही है कि अगर सलात अन्दर और बाहर की सब शर्तों को पूरा ना करते हुए पढ़ी जाये तो शर्तों को पूरा ना करते हुए सलात पढ़ने वाले के लिये, हलाकत, ख़राबी और सख़्ती बन जाती है, फ़ायदे के बजाए और नुक़सान हो जाता है, हम सबको अपनी-अपनी सलात देखनी चाहिये, अन्दर बाहर की सब शर्तों को पहले समझकर, जानकर ही सलात अदा करना बेहतर है। कुछ लोगों का ख़्याल बन गया है के सरकारे दो-आलम से पहले सलात नहीं थी। अल्लाह की किताब के हिसाब से हर पैग़म्बर ने अपनी उम्मत और नस्ल को सलात क़ायम करने का हुक्म फ़रमाया है।

अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फ़रमायाः

''हमने इनको नेक कामों के करने का और सलात क़ायम करने की वही की।'' सूरह अम्बिया 21, आयत 73

ये आयत हज़रत लूत, हज़रत इसहाक़, हज़रत याक़ूब अ.स. और इनकी नस्ल के पैग़म्बरों के बारे में है के इनको अल्लाह तआला ने सलात क़ायम करने का हुक्म दिया।

"ऐ मेरे बेटे सलात क़ायम करो।"

सूरह लुक़मान 31, आयत 17

ये आयत हज़रत लुक़मान की अपने बेटे को दी हुई नसीहत साबित करती है। ये बात बहुत ज़्यादा हैरत की है के आजकल के कुछ ज़ाहिरी आलिम अल्लाह की किताब से इतने दूर हो गये हैं और रस्मों और रिवाजों को इतना ज़्यादा मानने लगे हैं के वो सलात के बारे में हज़रत लुक़मान का ज़िक्र करना भी पसंद नहीं करते उन्हें ये मज़हब की और अपनी तौहीन लगती है।

"मेरी याद के लिये सलात क़ायम करो।"

सूरह ताॅहा 20, आयत नम्बर 40

अल्लाह की किताब की ये आयत हज़रत मूसा अ.स. से ताल्लुक़ रखती है ये आयत ज़्यादा क़ीमती है, क्योंकि ये आयत अल्लाह तआला के फ़रमान के मुताबिक़ सलात क़ायम करने का मक़सद क्या है? वजह क्या है? क्यों हम सलात क़ायम करें? इस बारे में है इस आयत में अल्लाह तआला ने साफ़-साफ़ फ़रमा दिया के ना जन्नत के लालच से, ना दोज़ख़ के डर से, ना कोई ख़्वाहिश पूरी हो। इस तमन्ना से, ना कोई परेशानी दूर हो जाये। इस वजह से बल्कि सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्लाह तआला का ज़िक्र और याद के लिये के वो हमेशा याद रहें। इसलिए सलात क़ायम करनी है, अगर सलात की कमी और टेढ़ापन और बरक़रार ना रहना दूर हो गयी तो अल्लाह तआला की याद में जो कमी है वो भी दूर हो जायेगी। हमें इस आयत से ये समझना है के अगर हमारी सलात अल्लाह तआला को हमेशा याद रखने के लिये है तभी हक़ीक़त की सलात है।

"जो लोग किताब के हुक्म को अमल में लाने के लिये समझते, पढ़ते हैं, यानी किताब को मज़बूती से थाम लेते हैं, और क़ायम रखते हैं सलात को, हम बेकार नहीं जाने देते, उनके अच्छे बदले को अच्छे और नेक किरदार लोगों के बदले को।" सूरह अल-आराफ़ 7, आयत नम्बर 170

इस आयत में फ़रमाया जा रहा है के जो लोग किताब को मज़बूती से थाम लेते हैं यानी पढ़ते हैं, समझने के लिये, समझते हैं अमल करने के लिये और किताब में दी गयी शर्तों के मुताबिक़ सलात क़ायम करते हैं, नेक हैं किरदार अच्छा है उनका अच्छा बदला बेकार नहीं होगा।

अफ़सोस तो ये है के अल्लाह तआला ने अपनी किताब में साफ़-साफ़ फ़रमा दिया लेकिन हम अल्लाह तआला के हुक्मों के ख़िलाफ़ जा रहे हैं और ख़्याल ये कर रहे हैं के हम अल्लाह तआला के हुक्मों के पाबन्द हैं! कौन है इसका ज़िम्मेदार?

अल्लाह तआला की किताब की इन आयतों से साबित हुआ के सरकारे दो-आलम से पहले भी सलात थी। तरीक़ा कुछ और था लेकिन हर उम्मत ने सलात की हक़ीक़त और असलियत को ख़राब कर दिया था और वो क़ौमें तबाह और बरबाद हुईं। सरकारे दो-आलम ने सलात की हक़ीक़त और असलियत को पेश किया और हम फिर सलात की अहमियत, हक़ीक़त और असलियत को भूलकर बरबाद और तबाह हो रहे हैं।

"ईमान वालो, ख़बरदार! नशे की हालत में सलात के क़रीब भी ना जाना जब तक ये होश ना हो के तुम क्या कह रहे हो।" सूरह निसा 4, आयत नम्बर 43

पहली बात इस आयत में ईमान वालों को मुख़ातिब किया गया है। ईमान की हक़ीक़त के मायने सूरह तकासुर 102, पारा 30 के हवाले से पूरे यक़ीन के बयान किये जा चुके हैं तो हमें सबसे पहले ये जानना बेहतर होगा के हम अल्लाह तआला की पसंद और क़ानून के मुताबिक़ ईमान वाले हैं या नहीं? क्या एक ईमान वाले में जो ख़ासियत होती है वो हम में है या नहीं! हम तो अपने आपको ईमान वाला समझे ही बैठे हैं। ईमान के मक़ाम और दर्जे हमें पता नहीं बस देखा-देखी काम चला रहे है। इस ग़ुलाम जैसा कोई जब भी हमें जगाने और असलियत बताने की कोशिश करता है तो रस्मों को मज़हब समझने की वजह से हम उस पर नाराज़ हो जाते हैं। काफ़िर होने के फ़तवे देने लगते है। उसे हर तरीक़े से तंग करने की कोशिश करते हैं के वो भी ग़ाफ़िल हो जाये।

याद रहे कोई भी सिर्फ़ ज़बान से कलमा पढ़कर या रस्मों को पूरा करके हक़ीक़त का ईमान वाला नहीं बन सकता। ईमान वाला होने के लिये पूरे दिल से ख़ुद को बदलना पड़ता है।

इसी आयत में दूसरी बात नशे की है। हम लोग सिर्फ़ शराब, गांजा, चरस या ऐसी ही और चीज़ों के इस्तेमाल को ही नशा समझते हैं, ये अधूरा समझना है। किसी क़ाबिल डॉक्टर से पूछो तो वो बतायेगा के हमारे जिस्म के अन्दर ही अलग-अलग नशा छोड़ने वाली कितनी रगे हैं, दौलत पाने का, तकब्बुर का, ताक़त का, औलाद का, माल का, ऊँचा मक़ाम हासिल करने का, सियासत का ये सब नशे ही तो हैं और भी ना जाने कितने नशे हैं जिन्हें हम

नशा ही नहीं मानते। अहले तरीक़त के मुताबिक़ तो ग़फ़लत सबसे बड़ा नशा है।

बस हमें तब ही सलात के क़रीब जाना है जब हम नशों को ही छोड़ दें! ये ही बेहतर है।

आयत का तीसरा हिस्सा हमें बता रहा है के हमें होश होना चाहिए के हम सलात में क्या पढ़ रहे है। क्या सुन रहे हैं यानी पेशे सलात क्या पढ़ रहे हैं और हम क्या-क्या पढ़ रहे हैं। इसका एक-एक लफ़्ज़ हमारी समझ में आना चाहिये जब हमारी समझ में ही नहीं आयेगा तो हम अमल कैसे कर पायेंगे? इस बारे में झिझक और शर्म छोड़कर सलात में आगे रहने वाले से हर पढ़े और सुने जाने वाले अल्फ़ाज़ के मायने समझने चाहिये अगर हम ऐसा नहीं करते तो हम अल्लाह तआला का हुक्म ना मानकर गुनाहगार होंगे और लगातार इस वक़्त हो रहे हैं। हम सलात को सही तरीक़े से अदा ना करके गुनाहगार बन रहे हैं और इस ग़लत-फ़हमी और ख़ुश-फ़हमी में है के हम तो बड़ा नेक काम कर रहे हैं।

''ये सलात के लिए उठते भी हैं तो सुस्ती के साथ लोगों को दिखाने के लिये अमल करते हैं और अल्लाह को बहुत कम याद करते हैं।'' सूरह निसा 4, आयत 142

ये आयत उन लोगों की तरफ़ इशारा करके उनके सही हो जाने का तक़ाज़ा कर रही है जो लोग सलात में सुस्ती और बे-दिली रखते हैं के सुस्ती और बे-दिली से काम न लें।

आयत का दूसरा हिस्सा बहुत ज़्यादा ग़ौर के क़ाबिल है जिसमें ''दिखाने'' दिखावे का ज़िक्र है। ये दिखावा क्या है? इसे समझना होगा। सलात सिर्फ़ अल्लाह तआला के

लिये है, इसमें जन्नत, दोज़ख़, लालच, ख़्वाहिश और दिखाबे को शरीक करना सलात में शिर्क करना है। इस ग़ुलाम ने अक्सर देखा है और आपने भी देखा होगा कि कुछ लोग बिना सोचे-समझे कुछ ऐसा बोलते हैं कुछ ऐसा करते हैं के साफ़ ज़ाहिर होता है के वो अपने आपको सलात पढ़ने वाला जताते हैं और बाक़ी दूसरों की एक ख़ास तरीक़े से बे-इज़्ज़ती करते हैं चाहे वो सलात अदा कर चुका हो या किसी दूसरी मस्जिद का इरादा रखता हो या बाद में अदा करने का इरादा रखता हो। इनके कुछ तकिया कलाम है।

1. बात करते रहेंगे और कहते रहेंगे। नमाज़ में देर हो रही है।
2. ओ-हो अज़ान हो भी गयी।
3. भई में तो नमाज़ पढ़ने जा रहा हूँ।
4. तुम नहीं चल रहे क्या?
5. एक अजीब अकड़ के साथ इधर-उधर देखते हुए लोगों को दिखाते हुए मस्जिद की तरफ़ जाना और रास्ते में बातें करने के लिए ज़रूर रुकना।
6. मस्जिद से निकलते ही चुग़लख़ोरी शुरू करना।
7. मस्जिद के गेट पर चाय की दुकान पर टोपी लगाये बैठे रहना।

इन लोगों के दिखावा करने के और भी कई तरीक़े हैं जो आप अच्छी तरह जानते हैं ऐसे ही लोगों के लिये इस आयत में ख़ास हिदायत है।

हम पहले पढ़ चुके हैं के "अल्लाह की याद के लिये सलात क़ायम करो।" यानी सलात का मक़सद अल्लाह

की याद को हमेशा के लिये अपने अन्दर बसा लेना है लेकिन हम जिस आयत के बारे में बात कर रहे हैं, उसमें फ़रमाया गया है ''अल्लाह को बहुत कम याद करते हैं, यानी सलात का जो मक़सद है उसे पूरा नही किया जाता। जिन लोगों से अल्लाह तआला को ये शिकायत है उन लोगों को ये शिकायत दूर करनी चाहिये।

''ईमान वालों! बस तुम्हारा वली अल्लाह है और उसका रसूल और वो पूरा-पूरा ईमान रखने वाले हैं जो सलात क़ायम करते हैं और रूकू की हालत में ज़कात देते हैं।''

सूरह मायदा 5, आयत 55

अगर हम वली लफ़्ज़ के सही मायने जान जायें तो इस आयत को समझने में बहुत आसानी हो जायेगी। भाई दीन अलग है और समझ अलग। कई लोगों ने वली लफ़्ज़ के मायने ''दोस्त'' हैं तों इस आयत के मुताबिक़ क्या अल्लाह तआला हमारा दोस्त है। नहीं दोस्त, मायने ग़लत हैं इसके अलावा भी वली लफ़्ज़ के कई और मायने समझे जाते हैं लेकिन अल्लाह तआला ने अपनी किताब में किसको वली फ़रमाया है। हमें ये समझना है अल्लाह तआला ने तीन क़िस्म के लोगों को वली फ़रमाया है:

1. ज़िम्मेदार, 2. बा-इख़्तियार, 3. वारिस

अगर हम वली लफ़्ज़ के ये सही मायने समझ लेते हैं तो हमारी समझ में आ जायेगा के अल्लाह तआला जिम्मेदार भी है, इख़्तियार रखने वाला भी है और वारिस भी, साथ ही साथ वो जो पूरा-पूरा ईमान रखते हैं, यक़ीन करते है। और सलात क़ायम करते हैं। इस आयत में अल्लाह तआला ने सही तरीक़े से हक़ीक़त में, असलियत में सलात क़ायम

करने वालों को ईमान वालों का वली फ़रमाया है।

सलात क़ायम करने की चीज़ है, सिर्फ़ पढ़ने की नहीं और याद रहे करने में पढ़ना शामिल हो सकता है लेकिन सिर्फ़ पढ़ने में करना शामिल नहीं हो सकता। समझदार अहले तरीक़त और मुरीदों के लिये इसमें इशारा और दाल है।

आयत के आख़री हिस्से में फ़रमाया गया है के रूकू की हालत में, झुकते हुए ज़कात देते हैं अब रूकू में ज़कात कैसे दें और रूकू में तो तस्बीह पढ़ी जाती है। आरिफ़ों ने साहबे मक़ाम पेशवाओं ने इस आयत की तशरीह को मना फ़रमाया है ये इल्मे सीना का मामला है अपने पीरो-मुर्शिद कामिल सूफ़ी ही अपने मुरीदों को तन्हाई में ये राज़ बताते हैं।

नमाज़ पढ़ने और क़ायम करने में फ़र्क़ है, फ़ारसी ज़बान का लफ़्ज़ है ''नमाज़ ख़्वान्दन'' ये लफ़्ज़ आतिश परस्तों के यहाँ मशहूर है जब वो अपनी किताब अवेस्ता पढ़ते हुए आग के सामने झुकते है। तो इसको ''नमाज़ ख़्वान्दन'' पढ़ना कहते हैं। अरबी के लफ़्ज़ ''सलात क़ायम करो'' को कब नमाज़ पढ़ना कर दिया गया। ये फ़िक्र के क़ाबिल है जबकि सलात को सलात ही कहना बेहतर है। जिस तरह अल्लाह को अल्लाह, रहमान को रहमान, रसूल को रसूल और पैग़म्बर को पैग़म्बर कहते हैं, उसी तरह सलात को सलात कहना ही बेहतर है। अल्लाह की किताब में लफ़्ज़ ''सलात क़ायम करो'' को बदलकर जो ''नमाज़ पढ़ना'' किया गया उससे बड़ा फ़र्क़ पैदा हो गया और नुक़सान हुआ।

एक बात और समझाने के क़ाबिल है के आग को जिस काम के लिये अल्लाह तआला ने बनाया तो जो हक़ीक़त की आग है वो तो वो ही काम करेगी ना, जिसके लिये अल्लाह तआला ने उसे बनाया है। अब अगर हम किसी और चीज़ का नाम आग रख दें तो वो हक़ीक़त की आग जो काम करती है वो कैसे करेगी? यही मामला पानी के साथ भी है। सलात को अल्लाह तआला ने ग़ैब की दुनिया में दाख़िल होने और मेराज यानी अल्लाह से मुलाक़ात के लिये बनाया है और अगर सलात अपना काम नहीं कर रही है तो कमी सलात में नहीं है, हम में है के हम उसे सही तरीक़े से क़ायम नहीं कर रहे हैं। सलात तो अपना काम करेगी, करती है लेकिन हम उसे सही तरीक़े से क़ायम तो करें।

''सलात क़ायम करो और अल्लाह से डरो।''

सूरह अनआम 6, आयत 72

यहाँ पर भी सलात क़ायम करने का हुक्म है और डर लफ़्ज़ से मक़सद मोहब्बत भरा डर है।

''हमने इंसान को बेहतरीन सांचे में बनाया और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी हालत को बदलकर नीचे से नीचे गिरा दिया।'' सूरह तीन 95, आयत 4-5

इस आयत को समझाने से पहले हमें कुछ और बातें पहले समझानी होगीं तभी हम इस आयत को सही तरीक़े से समझ सकेंगे।

हज़रत आदम अ.स. और अम्मा हव्वा जन्नत में अल्लाह तआला के हुक्मों के पाबन्द होकर रहते थे। शैतान के बहकाने में आकर अल्लाह तआला के हुक्म को तोड़कर

शजर चख लिया और बरहना हो गये और नीचे उतार दिये गये।

साबित हुआ के शैतान जन्नत में भी मौजूद हैं या आ और जा सकता है।

हज़रत आदम अ.स. ने अल्लाह तआला का हुक्म ना मानकर क्यों शैतान का मशवरा क़ुबुल कर लिया?

जब शैतान ने हज़रत आदम के पुतले को सजदा ना करके उम्मत को बहकाने का ऐलान किया तब उसने अपने काम की शुरूआत हज़रत हज़रत आदम अ.स. को बहकाकर की, वो तरीक़ा क्या था?

वो तरीक़ा ये था के उसने हज़रत आदम अ.स. के दिमाग़ पर क़ब्ज़ा जमाया और जो जन्नती दिमाग़ या अल्लाह तआला का हर हुक्म मानने वाला दिमाग़ था, उसके आधे हिस्से पर क़ाबिज़ हो गया और वहीं से उसने हज़रत हज़रत आदम अ.स. को गुमराह किया और नतीजा आपको मालूम ही है।

तब ही से हज़रत हज़रत आदम अ.स. की नस्ल के दो दिमाग़ हो गये। एक दिमाग़ का वो हिस्सा जो परवरदिगार के हर हुक्म को मानने वाला, समझने वाला है, दूसरा वो हिस्सा जो अल्लाह तआला के हुक्मों का नाफ़रमान बन गया।

इस हक़ीक़त को दिमाग़ के किसी भी डॉक्टर से पूछा जा सकता है के इंसान के दिमाग़ में दो हिस्से होते हैं या नहीं! एक नाफ़रमान दिमाग़ दूसरा फ़रमांबरदार दिमाग़।

अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फ़रमाया, ''शैतान

तुम्हारा खुला दुश्मन है।'' और साहिबे मक़ाम ने फ़रमाया के ''शैतान, शैतान के पीछे छुप जाता है।''

अब नस्ल बढ़ती रही, वक़्त गुज़रता और बढ़ता रहा साथ ही साथ नाफ़रमान दिमाग़ भी ताक़तवर और ज़्यादा ताक़तवर, चालाक, मक्कार होता गया और फ़रमांबरदार दिमाग़ पर भी हावी होने लगा। अल्लाह तआला ने अपनी किताब में फ़रमा दिया, ''जो मेरे ऊपर यक़ीन करने वाले होंगे और नेक काम करने वाले होंगे वो तेरे बहकावे में नहीं आयेंगे।''

आह ऐ मेरे परवरदिगार! मालिक और मुख़्तार! हम सबको ये राज़ समझने की तौफ़ीक़ अता फ़रमा। आमीन

मेरे अज़ीज़ भाई! अब जो भी किसी भी इबादत को सिर्फ़ ज़ाहिरी शर्तों के पूरा करते हुए करता है, उस इबादत के मक़सद और मंज़िल को नहीं जानता। ख़ुद को अंदर से पूरा-पूरा नहीं बदलता उसे खुद नहीं पता के वो नाफ़रमान दिमाग़ के क़ब्ज़े में है और नाफ़रमान दिमाग़ में बैठा शैतान उसे दिलासा देता रहता है। ठीक है तू अल्लाह तआला की इबादत कर तो रहा है लेकिन हक़ीक़त में जिस तरह शैतान ने हज़ारों साल इबादत की थी, इंसान अनजाने में शैतान की सुन्नत पर है और मान ये रहा है के अल्लाह तआला ने जो हुक्म दिये हैं, उनको पूरा कर रहा है।

एक पहलु और भी समझने का है कि हमें याद रखना चाहिए के करबला में आले रसूल का जिस बेरहमी से क़त्ल किया गया वो लोग भी तो ज़ाहिरी तौर पर मुसलमान ही थे। नमाज़ पढ़ते थे, रोज़ा, हज, ज़कात सब करते थे। कमाल तो ये है कि शराब के नशे में कूफ़ा की मस्जिद में

नमाज़ भी पढ़ाई गयी है।

अब ग़ौर करने और समझने के क़ाबिल बात ये है कि आले रसूल और उनके साथियों के मुसलमान होने में और यज़ीद और उसके साथियों के मुसलमान होने में फ़र्क़ क्या था?

सबसे बड़ा फ़र्क़ तौहीद, ईमान और यक़ीन का था। आले रसूल में तौहीद, यक़ीन, ईमान पूरा-पूरा था। आले रसूल और उनके साथी किसी भी इबादत को पूरा-पूरा समझकर उसकी अन्दर और बाहर की सब शर्तों को पूरा करते हुए अदा करते थे। जबकि अबु सूफ़ियान, मुआविया, यज़ीद और उनके साथी लालच, ताक़त, दौलत के लिये सब काम रस्मी और ज़ाहिरी तौर पर करते थे।

बस अब आप ख़ुद ही ग़ौर कीजिये, समझिये और देख लीजिये के हम कौन-सी इबादत किस के तरीक़े पर रहकर कर रहे हैं।

अब हमारी समझ में उस आयत के मायने भी आ जाने चाहिये जिसका ज़िक्र हो रहा था। वो आयत पहले बयान की जा चुकी है।

''जिस चीज़ का तुम्हें मालूम न हो उसके पीछे मत जाना के क़यामत के दिन, सुनने, देखने और हक़ीक़त के दिल की ताक़त के बारे में सवाल किया जायेगा।''

सूरह बनी इस्राईल 17, आयत 36

इस आयत में अल्लाह तआला फ़रमा रहा है और तक़ाज़ा कर रहा है कि हमें पहले हर चीज़ का पूरा पता होना चाहिए के उसका मक़सद, तरीक़ा, शर्तें क्या-क्या हैं और अगर मक़सद, सही तरीक़ा, सब शर्तें ना मालूम हों

तो उस चीज़ के पीछे नहीं जाना है, वो काम नहीं करना है अगर हमने बिना हक़ीक़त और तरीक़े के जाने वो काम किया तो हमारे सुनने और देखने से पूछा जायेगा तो हम क्या जवाब देंगे?

"फिर इनके बाद इनकी जगह पर वो लोग आये जिन्होंने अपनी सलात को बरबाद कर दिया और शहवत (ख़्वाहिशात) को मानने लगे बस ये जल्द ही अपनी गुमराही में जा मिले।"

सूरह मरयम 19, आयत 59

ज़रा ग़ौर तो कीजिये के ये किस के बारे में फ़रमाय जा रहा है के अपनी सलात बरबाद कर दी, सलात बरबाद करने के क्या मायने हुए? सलात बरबाद करने के ये मायने हुए के हमने सलात के सही तरीक़े, मक़सद, हक़ीक़त और असलियत को भुला दिया, गंवा दिया, बस अपनी ख़्वाहिश के मुताबिक़, अपनी समझ के मुताबिक़ सलात पढ़ने लगे। ये आयत हमारे लिये ही तो है, बस ये ग़ुलाम यही तो अर्ज़ करना चाह रहा है के पहले सलात का मक़सद, हक़ीक़त, असलियत समझ ली जाये, बाहर की पाकी के साथ-साथ अन्दर की पाकी किस तरह हासिल हो ये सीख लिया जाये। सलात के दौरान ख़्यालात ना आयें ये सीख लिया जाये। हक़ीक़त की सलात किस तरह क़ायम होती है। यह सीख लिया जाये। फिर उसके बाद सलात क़ायम की जाये जिस से ग़ैब की दुनिया में दाख़िला मिल सके वरना सर पटकते रहो! गुमराह रहो!

"मेरी याद के लिये सलात क़ायम करो।"

सूरह ताॅहा, 20, आयत 14

सलात का मक़सद अल्लाह तआला की याद हमेशा रहे

ये भी है। क्या हम ये मक़सद पूरा कर रहे हैं?

''तुम सलात क़ामय करो, ज़कात अदा करो और अल्लाह से बाक़ायदा वाबिस्ता (बांधना) हो जाओ।''

सूरह हज 22, आयत 78

इस आयत में बाक़ायदा से मायने, क़ायदे के साथ, तरीक़े के साथ है। वाबिस्ता लफ़्ज़ के मायने ''बंधा हुआ'' होते हैं। मतलब ये हुआ के हम सलात अल्लाह तआला के साथ बंध जाने के लिये क़ायम करें।

''फ़लाह पायी ईमान वाले उन लोगों ने जो अपनी सलात में ख़ुशू (आजज़ी, गिड़गिड़ाने) वाले हैं और वो जो लग़ु बातों से बचने वाले हैं।''

सूरह मोमिनून 23, आयत 1,2,3

फ़लाह लफ़्ज़ के आम और मशहूर मायने कामयाबी के हैं लेकिन हक़ीक़त में फ़लाह एक मक़ाम है जो जन्नत से बहुत ऊँचा है, इसीलिए अज़ान में फ़लाह की तरफ़ दावत दी जाती है। हक़ीक़त में सलात क़ायम करके फ़लाह का मक़ाम हासिल हो सकता है। रस्मी नमाज़ तो आलमे मलकूते नफ़्सानी से पार ही नहीं होती।

अब इस आयत में सलात क़ायम करने के लिये दो शर्तें और फ़रमाई गई हैंः 1. ख़ुशी से, नरम होकर और ख़ुद को कुछ भी ना मानकर अपने तकब्बुर को ख़त्म करना, 2. वो बातें या काम छोड़ देना जिसकी ज़रूरत या फ़ायदा ना हो जैसे बेकार ख़्यालात वग़ैरह।

अब अगर फ़लाह का मक़ाम पाना है तो हक़्क़ुल यक़ीन, ईमान, सलात क़ायम करना। उन शर्तों के साथ जो इस आयत में दी गई हैं, को अमल में लाना ज़रूरी है।

"जो अपनी सलात की हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

सूरह मोमिनून 23, आयत 9

इस आयत के ज़रिये फिर से अल्लाह तआला ने अपनी सलात को ख़राब कर देने वाली चीज़ों से हिफ़ाज़त में रखने का हुक्म फ़रमाया है। अब सवाल ये है के हम अल्लाह तआला के हुक्म के मुताबिक़ अपनी सलात की हिफ़ाज़त कर रहे हैं या नहीं? और अगर कर रहें हैं तो हमें ये तो मालूम ही होगा के किन कामों से? किन बातों से? किस तरह हिफ़ाज़त कर रहे हैं? क्या हमें सच में मालूम है?

"वो मर्द जिन्हें कारोबार और ख़रीदना और बेचना ख़ुदा का ज़िक्र करने, सलात क़ायम करने और ज़कात अदा करने से ग़ाफ़िल नहीं कर सकती।"

सूरह नूर 24, आयत 37

ये आयत हमें बता रही है के हम दुनिया का कोई भी काम कर रहे हों लेकिन ख़ुदा का ज़िक्र, सलात की कैफ़ियत और हालत और ज़कात अदा करते वक़्त जो हमारी अन्दर की पाक हालत होनी चाहिए वो ही हालत वो काम करते हुए भी होनी चाहिये, यानी हर काम में अल्लाह तआला को याद रखना है, चाहे इस दुनिया में अल्लाह की याद को भुलाने के बहुत ज़रिये हों लेकिन हमें कोशिश करनी है के हमेशा अल्लाह तआला को याद रखें और ये तभी होगा जब हम सलात को बिना फ़ालतू ख़्यालात के, सिर्फ़ अल्लाह तआला की याद हमेशा रहे, इसलिए अदा करेंगे।

"क्या तुमने नहीं देखा अल्लाह के लिये ज़मीन और आसमान की सब चीज़ें और पर फैलाये परिन्दे भी सब

अल्लाह की पाकीज़गी बयान कर रहे हैं और सब अपनी-अपनी सलात से बा-ख़बर हैं।'' सूरह नूर 24, आयत 41

ये आयत गहराई से समझने की है दुनिया की हर चीज़ अपनी सलात को बहुत अच्छी तरह जानती है, चाहे वो रूकू और सजदा ना भी कर रहे हों, तब भी वो अपनी सलात से पूरी तरह वाक़िफ़ हैं। पेड़-पौधे, परिन्दे, जानवर और सब चीज़ें अपनी सलात के तरीक़े और मक़सद को जानकर सलात अदा कर रहे हैं। चाहे उनके तरीक़े इंसान की सलात से अलग हों, इंसान ने उनकी सलात को ना देखा हो, ना जाना हो।

आयत के आख़िरी हिस्से में शिकवा किया गया है के ऐ इंसान! सब अपनी-अपनी सलात के तरीक़े, हक़ीक़त से बाख़बर हैं लेकिन तू अपनी सलात से क्यों बेख़बर हो गया है? क्यों तूने अपनी सलात की अहमियत, हक़ीक़त, असलियत व मक़सद और असली तरीक़े को भुला दिया। क्यों तू रस्म सी पूरी करता है, दिल को हाज़िर करना, हाज़िर रखना, पहले सीख बस फिर ही तेरी सलात क़ुबूल होने के क़ाबिल होगी।

अल्लाह तआला ने सूरह नमल 27 और सूरत लुक़मान 31 की शरू की आयतों में भी फ़रमा दिया के हिदायत, ख़ुशख़बरी, रहमत उनके लिये है जो हक़ीक़त में ईमान, यक़ीन वाले हैं और सलात को क़ायम, क़ायम करते हैं।

''बेटा! सलात क़ायम करो, नेकियों का हुक्म दो, बुराईयों से मना करो और इस राह में जो भी मुसीबत पड़े उस पर सबर करो।'' सूरह लुक़मान 31, आयत 17

सूरह लुक़मान में हज़रत लुक़मान ने अपने बेटे को

हिदायत देते हुए ये लफ़्ज़ इस्तेमाल किये, साथ ही साथ ये भी फ़रमाया के ये काम करने से अगर मुसीबत आती है तो सबर करो।

अब हम मिलकर एक दूसरे पहलु से भी सोचते हैं, सलात मज़हबे इस्लाम का दूसरा बुनियादी काम है। ज़रूरी है, इससे कोई भी समझदार आदमी मना नहीं कर सकता, लेकिन सलात क़ायम करना उस तरीक़े से जो अल्लाह तआला का फ़रमान है, सरकारे दो-आलम का फ़रमान है ज़रूरी है! लेकिन हो क्या हो रहा है?

दुकान पर बोर्ड तो इस्लाम का और सलात का लगा है लेकिन दुकान के अंदर फिरक़ों का सामान बेचा जा रहा है। हमें कुछ लोग दावत देते हैं कि आप इस्लाम को समझने के लिए आज रात हमारे साथ सलात में शामिल हो जाईये, ये मछली को फांसने के लिये कांटे पर लगा आये हैं। हम शामिल होते हैं जमात के फ़ौरन बाद ऐलान होता है के कुछ वक़्त रुकिये, दीन की बातें होंगी। अब कांटा पानी में डाल दिया गया, हमें कुछ क़िस्से सुनाकर जज़्बाती बनाया जाता है, इस्लाम के नाम पर और हमसे पेशकश की जाती है कि हम इस्लाम की तब्लीग़ जैसे बड़े काम और नेक काम में शामिल हों और उनके साथ सफ़र में शामिल हों, अगर हम शामिल हो गये तो बस मछली फंस गई। सफ़र के दौरान हमें इस्लाम की बहुत अच्छी बातें बताई और समझाई जाती हैं लेकिन सिर्फ़ वो जो उन्हें पहले बताई गईं और समझाई गयी हैं। उस फ़िरक़े के बानी ने जैसा अपनी समझ से इस्लाम को समझा, वैसा क़ुरआन का तर्जुमा किया, हदीसों का तर्जुमा किया और

अपनी समझ से मज़हबे इस्लाम का जो ख़ाका तैयार किया था बस सिर्फ़ वो नक़्शा ही हमारी समझ में बैठाया जाता है। बाक़ी के इस्लाम के बारे में या तो बात ही नहीं होती और अगर होती भी है तो दूसरे सब लोगों को नादान, ग़लत और नाफ़रमान बताकर हमारे ज़ेहन में नफ़रत भरनी शुरू कर दी जाती है।

अब मछली फंस तो चुकी है उसे बहुत प्यार से निकाला जाता है लेकिन मछली के गले से कांटा नहीं निकाला जाता ना ही उसे पकाकर खाया जाता है, बल्कि उसे दोबारा अपने तालाब में डाला जाता है, ख़ुराक भी दी जाती है, डोर भी रहती है अब उस मछली का काम नई पैदा होने वाली मछली या बाहर से आई हुई नई मछली को भी कांटा पहनाना होता है। कांटा भी सोने का, अल्लाह तआला और उसके रसूल के फ़रमाबरदार होने का।

ऐसा नहीं है कि ये काम एक ही फ़िरका कर रहा है, ज़्यादातर यही कर रहे हैं, बस तरीक़े अलग-अलग हैं। सब अपनी-अपनी गिनती बढ़ाकर ताक़त बढ़ाना चाहते हैं और बेवक़ूफ़ बनते हैं हम! और ज़िन्दगी भर बने रहते हैं। वो नक़्शा जो हमें समझाया गया था वो जाल बनकर हमें फंसा लेता है और हम ख़ुद भी नासमझी में उस जाल को ज़्यादातर मज़बूत करते रहते हैं। समझ बड़ी नासमझ है!

यक़ीनन ग़ुलाम की बयान की हुई हक़ीक़त बहुत से लोगों को अच्छी या बुरी लगेगी, लेकिन ग़ौर और फ़िक्र से काम नहीं लेंगे। अच्छा ये ग़ुलाम एक सवाल करता है के सलात का फ़र्ज़ होना, अहमियत फ़ायदे तो सब फ़िरक़े वाले बताते हैं लेकिन सलात की हक़ीक़त, असलियत,

सही तरीक़ा, अंदर की पाकी, दिल हाज़िर रहे, ख़्यालात ना आयें और सही सलात जो क़ुबूल होने के क़ाबिल हो ये तरीक़ा हमें कोई क्यों नहीं बताता, समझाता?

वो इसलिये के उन्हें ख़ुद ही नहीं पता, सलात सब शर्तों को पूरी करते हुए कैसे अदा की जाये? ये तो बस सरकार ख़्वाजा क़ुतबुद्दीन बा-इख़्तयार काकी क़ु.सि.अ. ने अपने पीरो-मुर्शिद से सीखा, समझा, अमल में लाये और फिर अपने इल्मे बातिन के वारिसों को सिखाया, समझाया और उनसे अमल भी कराकर हक़ीक़त की सलात क़ायम कराकर मेराज यानी अल्लाह तआला से मुलाक़ात कराई और यही तरीक़ा अल्लाह तआला के बहुत से कामिल और मुकम्मल वलियों का रहा, अब भी है, ता-क़यामत रहेगा।

बेशक सरकारे दो आलम ने, असहाबियों ने, अल्लाह के वलियों ने ज़ाहिरी सलात को उसकी सब शर्तों के साथ अदा किया, लेकिन सलात की हक़ीक़त, तरीक़ा सिर्फ़ ख़ास असहाबियों को ही बताया, समझाया। उसी सुन्नत को क़ायम रखते हुए अल्लाह के तमाम वलियों ने भी कुछ ख़ास अन्दर के इल्म की चाहत, तलब रखने वाले लोगों को सलात की हक़ीक़त समझाई, बाक़ी आम लोगों को सलात क़ायम करने को फ़रमाया।

याद रहे के हज़रत बिलाल र.अ. सरकारे दो आलम के खड़े हो जाने पर फ़रमाया करते थे, ''क़द क़ामतिस सलाह'' यानी सलात खड़ी हो गयी है। ऐसा नहीं है। हज़रत बिलाल के ये फ़रमाने पर के ''सलात खड़ी हो गयी है'' सरकारे दो आलम उठ खड़े होते थे, ये समझने लायक़ बड़ा फ़र्क़ है जिसे हमें समझना ही चाहिये और समझ

रखने वालो के लिये इसमें इशारा है।

अच्छा अब एक पहलु और भी, इसे भी समझते हैं। सरकार ग़ौस पाक ने अपनी किताब ''मिश्कात उल अनवार'' में फ़रमाया, ''इबादत तर्के है ना कि आदत के इबादत की जगह ले ले'' क्या ये फ़रमान समझ लिया अगर समझ लिया तब आगे बढ़िये वरना रूकिये, पहले इस फ़रमान को समझ लीजिए, समझ लिया? नहीं?

इस फ़रमान में सरकार ग़ौस पाक ये फ़रमा रहे हैं के इबादत, इबादत को छोड़ देने का नाम है ना कि इबादत को आदत बना लेने का नाम है। समझो के आदत में ग़फ़लत होती है, एक मशीन की तरह लेकिन इबादत में ग़फ़लत नहीं होती। एक तरीक़े से सरकार ग़ौस पाक, सरकारे दो आलम के फ़रमान ''दिल हाज़िर रहे बिना सलात नहीं है'' के मायनों को ही तो दूसरे अल्फ़ाज़ों में समझा रह हैं। मक़सद इबादत छोड़ना नहीं है। आदत बनाकर, ग़फ़लत में अदा करने को छोड़ना है।

इसी किताब में दूसरी जगह फ़रमाया गया है ''इबादत आदत छोड़ने का नाम है'' यानी ख़ुद को बदलने का नाम इबादत है, जब हम आदत बदलते हैं तो हमारे बदलने की शुरूआत होती है।

अब हम फिर अल्लाह की किताब की एक और आयत को समझने की कोशिश करते हैं।

'यक़ीनन जो लोग अल्लाह की किताब की तिलावत करते हैं और उन्होंने सलात क़ायम की है।''

सूरह फ़ातिर 35, आयत 29

ये तिलावत लफ़्ज़ क्या है? आम लोगों ने तिलावत लफ़्ज़ का तर्जुमा ''पढ़ना'' किया है। बस पढ़ो, रटो, ये सरासर ग़लत है। तिलावत लफ़्ज़ के मायने हैं। ''अमल में लाने के लिये समझाना और समझने के लिये ही पढ़ना'' को तिलावत कहना चाहिये। अब अगर पढ़ा सिर्फ़ पढ़ा दोहराया, रटा तो इसे तिलावत कहना समझदारी नहीं। समझा नहीं तो वो पढ़ना बेकार है और अगर अमल नहीं किया तो पढ़ना और समझना भी बेकार है, यानी पढ़ो तो सिर्फ़ इसलिये के समझ में आ जाये, समझाना मक़सद हो पढ़ने का, और अगर समझ में ही नहीं आया तो कुछ भी कैसे भी पढ़ना बेकार है, कोई क़ीमत नहीं उस पढ़ने की जो समझ में ना आये।

अच्छा ठीक है हमने पढ़कर समझ लिया अब अमल नहीं किया तो उस पढ़ने-समझने का फ़ायदा क्या हुआ? आलिम बे-अमल बन गये। हमारी ज़िन्दगी और आख़िरत का मामला अमल से ताल्लुक़ रखता है पढ़ने और समझने से नहीं रखता।

आयत का दूसरा हिस्सा हैः ''उन्होंने सलात क़ायम की है (या रखते हैं)'' एक तर्जुमे के मुताबिक़ क़ायम की है'' यानी क़ायम हो चुकी और दूसरे तर्जुमे के मुताबिक़ क़ायम रखते हैं यानि लगातार वो काम जारी है, दोनों की हालतों में सलात क़ायम करने का ताल्लुक़ अल्लाह की किताब पढ़ने, समझने, अमल करने से हुआ या नहीं? अब अगर अल्लाह की किताब को पढ़ा समझा अमल नहीं किया तो सलात कैसे क़ायम हो जायेगी?

चलो ठीक है हमें पढ़ना नहीं आता तो सुनना तो आता

है अगर हमारे अन्दर लगन हो तो हम समझने के लिये किसी से तो अल्लाह की किताब का तर्जुमा सुन सकते हैं समझ भी सकते हैं और अमल में ला भी सकते हैं। वरना ये तो ऐसा हो जायेगा के ना तो हमारे पास पासपोर्ट है, ना वीज़ा है, ना टिकट है और हम मुल्क में क्या खायेंगे। क्या पहनेंगे ये तैयारी कर रहे हैं। इसलिये हमें चाहिये के रस्मों और देखा-देखी करने को छोड़कर, अल्लाह तआला ने अपनी किताब में जो सलात क़ायम करने का तरीक़ा बताया है, पहले उसे अच्छी तरह से सीखें और समझें। ये काम हमें ख़ुद करना चाहिये अगर हम किसी से पूछकर करने लगते हैं तो जो जवाब हमको मिलेगा वो अल्लाह तआला की किताब के ठीक-ठीक मुताबिक़ होगा इसमें शक है क्योंकि हर बताने वाला किसी ना किसी फ़िरक़े से ज़रूर ताल्लुक़ रखता होगा और उसके जवाब में उसके फ़िरक़े की और उसकी समझ शामिल होगी जो अल्लाह तआला के हुक्म को अपनी समझ से समझना होगा।

अल्लाह तआला की किताब के बहुत सारे तर्जुमें हैं और सब तर्जुमों में अलफ़ाज़ों का फ़र्क़ है जो कि तर्जुमा करने वालों की अलग-अलग समझ को सबित करता है। अब हम तर्जुमा सुनते और पढ़ते हैं तो उस तर्जुमा करने वाले की समझ को पढ़ते और सुनते हैं लेकिन समझते ये हैं कि अल्लाह तआला के हुक्मों को समझ रहे हैं, इसका ख़्याल रखना चाहिए। अल्लाह तआला की किताब के सही मायने बस अल्लाह वाला ही समझा सकता है।

''अब सलात क़ायम करो, ज़कात अदा करो, अल्लाह और उसके रसूल की अताअत करो के अल्लाह तुम्हारे

आमाल से ख़ूब बाख़बर है।''

सूरह मुजादिला 58, आयत 13

पहले हम अताअत लफ़्ज़ को समझते हैं, अताअत लफ़्ज़ के मायने होते हैं, बिना अपनी अक़्ल और समझ को बीच में लाये, फ़रमाया हुआ मानना। अब अल्लाह और उसके रसूल ने जो फ़रमाया, उसे अपनी अक़्ल से नहीं तोलना और ना ही अंजाम की परवाह करना, क्योंकि अगर पूरी-पूरी अताअत है तो अंजाम तो बेहतर ही होगा ये अल्लाह तआला ने वादा फ़रमाया है। हाँ अगर अताअत में हमारी समझ और अक़्ल शामिल है तो अंजाम के हम ख़ुद ज़िम्मेदार हैं।

अल्लाह तआला को हमारे हर काम और नियत की पूरी ख़बर है, बेशक अल्लाह तआला हमारे दिलों का हाल जानता है, ये आयत इशारा कर रही है के जब हमें ये पूरा-पूरा यक़ीन होगा के अल्लाह तआला हमारे अंदर और बाहर के सब कामों को जानता है तो हमें जब ये ख़बर हो जाती है के कोई हमारे अंदर और बाहर की हालत को जानता है तो हम चाहे दिखावे के लिये ही, अपने आपको अच्छा दिखाने की कोशिश करते हैं तो जब हमें इस आयत के ज़रिये ये ख़बर हो गयी के अल्लाह तआला सब जानता है अब हमें अन्दर और बाहर से पाक होना ही चाहिए। हमने आयत के दूसरे हिस्से को समझा है।

अब आयत के पहले हिस्से पर आते हैं, पहले ये समझ लें के अल्लाह की किताब को पढ़ने का सही तरीक़ा क्या है?

भाई अगर हम अल्लाह की किताब को तेज़ी से पढ़ते

हुए निकल जायेंगे तो कुछ समझ न आयेगा और अगर हम सिर्फ़ एक आयत पढ़ेंगे तब भी समझ ना आयेगा, सही तरीक़ा ये है के हम एक आयत को दूसरी आयत या तीसरी आयत से मिलाकर सिलसिले वार आयत के मायने समझें। कहीं पर पहली आयत के मायने दूसरी या तीसरी आयत में खुलते हैं। कहीं बाद की आयत के मायने पहली आयत में छुपे होते हैं।

अब आयत पर आते हैं, अल्लाह तआला हमारे हर आमाल से बा-ख़बर है। यानी अंदर-बाहर से पाक हो जाओ। अताअत करो यानी अपनी समझ को छोड़कर हुक्मों को मानो। अब सलात क़ायम करो और ज़कात अदा करो। हमें समझना ये है के अल्लाह तआला और उसके रसूल के हुक्मों को मानें बिना अपने आपको अंदर से, बाहर से पूरी तरह पाक किये बिना सलात क़ायम होना, ज़कात अदा करना मुश्किल ही है। इन कामों के नाम पर हम कुछ और ही कर रहे हैं।

''जो अपनी सलात को दायम करने वाले है।''

सूरह मआरिज 70, आयत 23

आए हाए– दायम लफ़्ज़ के मायने होते हैं ''हमेशा यानी वो लोग जो हमेशा ही सलात की हालत में रहते हैं यानी ये मुमकिन है के हमेशा की सलात की हालत में रहा जा सकता है, बस! जिस अल्लाह वाले की सलात हमेशा है बस वो ही सलात की हक़ीक़त, असलियत हमें समझा सकता है। वो तो बस हमेशा सलात में है और सलात हमेशा उसमें है।

''जिस क़द्र मुमकिन हो, तिलावत करो, सलात क़ायम

करो, ज़कात अदा करो और अल्लाह को कर्ज़े हसना दो, फिर जो कुछ भी अपने लिये आगे भेज दोगे उसे ख़ुदा की बारगाह में हाज़िर पाओगे, बेहतर और बदले के ऐतबार से अज़ीमतर।'' सूरह मुज़म्मिल 73, आयत 20

जितना ज़्यादा से ज़्यादा हो सके अल्लाह तआला की किताब को अमल करने के लिये समझो और समझने के लिये पढ़ो, ये है तिलावत के सही मायने, लेकिन जब से तिलावत के मायने सिर्फ़ पढ़ना, दोहराना, रटना ही रह गये हैं। तब ही से सारा मामला गड़बड़ होता चला गया। अल्लाह तआला तो अपनी किताब में फ़रमा रहा है, रुक-रुककर पढ़ो, ग़ौर और फ़िक्र करो। गूंगे बहरों की तरह ना हो जाओ और हम हैं के सवाब के लालच में बिना सोचे समझे तेज रफ़्तार से पढ़े जा रहे हैं। मक़सद बिल्कुल ही भूल गये।

सलात क़ायम करो, ज़कात अदा करो और अल्लाह तआला को अच्छा और ख़ूबसूरत कर्ज़ दो, ''हसना'' ये लफ़्ज़ हसना, हुस्न से बना है और हुस्न से मक़सद बाहर का हुस्न नहीं, अन्दर की ख़ूबसूरती है।

'कर्ज़े हसना के मायने हैं अल्लाह और सिर्फ़ अल्लाह के लिये, अन्दर से ख़ूबसूरत होकर, बिना किसी लालच या ख़्वाहिश के नेक काम करना। बस ये ही आगे के लिये बेहतर है। और ये ही आख़िरत में काम आयेगा।

''बेशक पाकीज़ा रहने वाला कामयाब हो गया जिसने अपने रब के नाम की तस्बीह की और फिर सलात क़ायम की।'' सूरह ऑला 87, आयत 15

''पाकीज़ा रहने वाला'', पाकीज़ा लफ़्ज़ के मायने होते

हैं बेगुनाह, बेजुर्म, ताहिर बिना नुक़्स वाला, बे-ऐब, उम्दा, बेहतरीन। ये आयत हमें बता रही है के अल्लाह तआला की नज़र में वो ही कामयाब और मुराद पा लेने वाला है जिसमें पाकीज़ा होने की ये बातें हों।

तस्बीह लफ़्ज़ के मायने होते हैं पाकीज़ा बनकर पहले पाकीज़ा होकर फिर अल्लाह की याद करना। क्या शान है अल्लाह की किताब की के पहले पाकीज़ा होकर उसके बाद ही अल्लाह की याद करनी है। अल्लाह की किताब हमारी ही बेहतरी के लिये ही तो है तो पहले पाकीज़ा बनो फिर तस्बीह करो इसके बाद सलात क़ायम करो। ये है बेहतरीन तरीक़ा इस ज़िन्दगी और आख़िरत के लिये। और हो क्या रहा है? पहली और दूसरी सीढ़ी छोड़कर सीधे तीसरी सीढ़ी पर छलांग लगाने की कोशिश हो रही है। क्या ये समझदारी है?

''इन्हें इस बात का हुक्म दिया गया या के ख़ुदा की इबादत करें और इस इबादत को सिर्फ़ उसके लिये रखें सलात क़ायम करें, ज़कात अदा करें, यही सच्चा और मज़बूत दीन है।'' सूरह बय्यना 97, आयत 5

इस आयत को समझने से पहले हमें कुछ और बातें समझ लेनी ज़रूरी हैं। पहली बात तो ये है कि हमे अच्छी तरह ये समझ लेना चाहिये के किसी भी अल्फ़ाज़ के कई मायने होते हैं। एक तो आम और मशहूर मायने होते हैं। इन मायने के साथ अल्लाह तआला की किताब को समझ पाना इस ग़ुलाम के तजुर्बे के मताबिक़ नामुमकिन है। दूसरे क़िस्म के मायने होते हैं लुग़त या डिक्शनरी में दिये हुए और तीसरे मायने होते हैं उस लफ़्ज़ की हक़ीक़त के

सही मायने, जब हम मशहूर मायनों के साथ रखकर अल्लाह की किताब को समझने की कोशिश करते हैं तो अल्लाह की किताब को समझ ही नहीं पाते। ये मायने बदलते वक़्त के साथ अहिस्ता-आहिस्ता बदले गये हैं। कुछ अक़्लों ने अपनी समझ से बेहतर समझकर मायनों को बदला बेहतरी के लिये, लेकिन उसका बहुत बड़ा नुक़सान हुआ।

दूसरे क़िस्म के मायने लुग़त में दिये गये हैं, कुछ किताबें छापने वालों का ये हाल है कि वो अपनी दीनी ज़िम्मेदारी को भूलकर कुछ भी किताबें छापते रहते हैं। उन्हें सिर्फ़ अपने मुनाफ़े से मतलब है। क़ौम चाहे कितनी भी गुमराह हो जाये ऐसे ही लोग जब कोई लुग़त छापते हैं तो कुछ भी तस्दीक़ नहीं करते। बस जो मशहूर और आम मायने हैं वो ही छापकर एक नई लुग़त तैयार कर देते हैं। अब अगर लुग़त देखकर भी मायने लिये जायें तो उनके सही ही होने की कोई गारन्टी नहीं है बल्कि इंसान का ग़लत यक़ीन उन मायनों को देखकर और मज़बूत हो जाता है। और वो कहते हैं के फ़्लां लुग़त कामूस में देख लो। ये गुमराही है। ये भी याद रहे के सब लुग़त ऐसी नहीं हैं।

तीसरे क़िस्म के मायने हक़ीक़त के मायने होते हैं, वो मायने सिर्फ़ अल्लाह वाला कामिल पीर ही जानता है और वो ही बता सकता है, जिनको समझकर हमें अल्लाह की किताब ठीक-ठीक समझ में आ जाती है और हम हैरान हो जाते हैं कि किताब और अल्फ़ाज़ वो ही रहते हैं लेकिन हक़ीक़त बदल जाती है और हमारी रूहानी तरक़्क़ी का सफ़र शुरू हो जाता है। सरकार फ़रमाया करते थे के कव्वे

की बोली को कव्वा ही समझ सकता है, इसमें गहरा इशारा है।

दूसरी बात ज़रूरी ये है, अल्लाह तआला की किताब के हवाले से, एक जगह जो लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया वहाँ उस आयत में उसके कुछ मायने हैं और अगर वो ही लफ़्ज़ दूसरी जगह है तो दूसरी आयत में उसके कुछ और ही मायने हैं यानी आयत के मुताबिक़ मायने बदल जाते हैं।

अब हम आयत के लफ़्ज़ इबादत की तरफ़ आते हैं, इबादत लफ़्ज़ के मशहूर और आम मायने पूजने, पूजा करने के हैं जबकि हक़ीक़त के मायने हैं। ''अल्लाह तआला को जान लेने, पहचान लेने के लिये की गई कोशिश और ज़रिये को इबादत कहते हैं। ''सलात इबादत है सरकारे दो आलम ने फ़रमाया के ''सलात मोमिन की मेराज (मुलाक़ात) है तो इस हदीस से भी तो वो ही हक़ीक़त के मायने साबित होते हैं जो ऊपर लिखे गये हैं।

बस जो भी काम अच्छी नियत के साथ अल्लाह तआला को पहचान लेने के लिये होगा वो इबादत है। इबादत की हदें बना देना समझदारी नहीं है।

अब आयत पर आते हैं, ''उन्हें हुक्म दिया गया था के ख़ुदा की इबादत करें। आयत के इस हिस्से के मायनों को इतना कुछ समझ लेने के बाद ख़ुद ही फ़ैसला करें के इस आयत में तक़ाज़ा क्या है? और मायने क्या हैं?

आयत का दूसरा हिस्सा है, ''इस इबादत को सिर्फ़ उस के लिये ख़ालिस रखें'' यानी उसको जान लेने, पहचान लेने के लिये ही ज़रिया बनायें। कोई भी, किसी भी, क़िस्म की ख़्वाहिश, लालच या काम करना उसके हवाले ना करें,

बस सिर्फ़ उस ही के लिये इबादत करें फिर देखें और आज़मायें के ज़िन्दगी कितनी पुरसुकून हो गयी।

''सलात क़ायम करें'' ज़कात अदा करें यही सच्चा और मज़बूत दीन है'' तफ़्सील को ग़ौर से पढ़ने और समझने के बाद हमारी समझ मे आ जाना चाहिये के अल्लाह तआला ने किसको सच्चा और मज़बूत दीन फ़रमाया है।

उन लोगों की मिसाल है जिन पर तौरेत का भार रखा गया, और वो उठा ना सके, उस गधे की मिसाल है जो किताबों का बोझ उठाये हों, ये बहुत बुरी मिसाल है, उन लोगों के लिये जिन्होंने अल्लाह तआला की आयात को झुठलाया। बदला और ख़ुदा किसी ज़ालिम क़ौम को हिदायत नहीं देता।'' सूरह जुमा 62, आयत 5

इस आयत को समझने के लिये ये ज़रूरी है के हम ये जान लें के यहूदियों ने अपनी आसमानी किताब के मायने और मक़सद बदल दिये उन्होंने ये इस तरह किया के अल्फ़ाज़ वो ही रहे लेकिन मायने बदल गये और रस्में बढ़ गई, यहूदी मज़हब, अल्लाह तआला और अपने पैग़म्बर के पैग़ाम को भूल गया।

इसी की मिसाल देते हुए अल्लाह तआला ने फ़रमाया के एक गधे को जैसे ये पता नहीं होता के उस पर कितनी किताबें हैं वो तो बस बेख़बर होकर वज़न ढोता रहता है। इसी तरह उस क़ौम के आलिम भी अपनी आसमानी किताब के मक़सद को तो भूल गये, बस रटटू तोते बन गये। दोहराते रहे पढ़ते रहे और अपनी समझ से मायने बनाकर गुमराह हुए। अल्लाह तआला ने ऐसे लोगों के लिये बहुत बुरी और ख़तरनाक मिसाल दी है।

अब हम ये ग़ौर करते हैं के क्या क़ुरान के साथ ये नहीं हो रहा है क्या, क़ुरान के अलग-अलग तर्जुमे करके उसमें अपनी समझ को शामिल नहीं किया जा रहा, क्या तफ़्सीर और शाने नुज़ूल के ज़रिये क़ुरआन के असली पैग़ाम को बदलने की कोशिश नहीं हो रही है। क्या इस्लाम में अपने-अपने फ़िरक़ों की तालीम को बढ़ाकर इस्लाम के नाम से शामिल करके, हक़ीक़ी इस्लाम के मक़सद को ख़त्म नहीं किया जा रहा है। अब हालत ये है कि क़ुरआन का इल्म और हदीसों का इल्म फ़िरक़ों की अपनी तालीम में छुपाया जा रहा है। इस ग़ुलाम को ये नहीं लगता के जो तौरेत के साथ किया गया, वो क़ुरआन के साथ नहीं हो रहा।

तीसरी बात, कोई भी क़ौम, इंसानों से मिलकर बनती है, एक इंसान को देखकर दूसरा और फिर तीसरा ज़ालिम बनता चला जाता है और फिर पूरी क़ौम ज़ालिम हो जाती है। अल्लाह तआला ने साफ़ फ़रमा दिया कि वो ज़ालिम क़ौम को हिदायत नहीं देता तो अल्लाह तआला से हिदायत पाने के लिये हम में से हर इंसान को ज़ुल्म छोड़ना चाहिये तो पूरी क़ौम ज़ुल्म छोड़ेगी और अल्लाह तआला की हिदायत पाने के क़ाबिल बनेगी और सीधी राह पर क़ायम होगी। इसके लिये हमें ज़ुल्म के वो मायने समझने पड़ेंगे जो हक़ीक़त के, अल्लाह तआला के नज़दीक ज़ुल्म के मायने हैं। ज़ुल्म के जो मशहूर आम मायने हैं उससे काम नहीं चलेगा और ज़ुल्म के सबसे छोटे हक़ीक़त के मायने हैं, "जो जिस मुक़ाम की चीज़ है उसे वहाँ न रखना ज़ुल्म है।" अब इससे हमें अंदाजा हो जाना चाहिये के अल्लाह तआला के मुताबिक़ क्या ज़ुल्म है। किसी के बारे में आँखों

से ऐसा इशारा करना जिससे उस इंसान की बेइज़्ज़ती हो, ज़ुल्म है, हराम है। हमने तो ज़ुल्म और हराम-हलाल की अपनी मर्ज़ी और समझ से तारीफ़, परिभाषा बना रखी है।

जब अल्लाह तआला ने तौरेत किताब का वज़न ना उठाने वालों को, न समझने वालों को गधा क़रार दे दिया तो क़ुरआन तो ज़्यादा अज़ीम किताब है तो क़ुरआन को ना समझने वाला, ना अमल करने वाला इंसान और मुसलमान कहलाने का कैसे हक़दार हो सकता है।

मेरे अज़ीज़ भाई! ग़फ़लत के नशे से बाहर आओ, जागो, ग़ौर और फ़िक्र करो, रस्मों और तक़लीद को छोड़ो। अल्लाह की किताब के पहले ज़ाहिरी मायनें, पढ़ो समझो, फिर गहरे मायने समझो तब समझ में आयेगा के ''सलात क़ायम करो'' ये क्यों फ़रमाया गया है।

''क़ुरआन को ठहर-ठहर कर बाक़ायदा पढ़ो।''

सूरह मुज़म्मिल 73, आयत 4

इस आयत में अल्लाह तआला ने अपने नबी को हुक्म देते हुए हमारे लिये फ़रमाया के ठहर-ठहरकर पढ़ो यानी अगर हम ठहर-ठहर कर पढ़ेंगे तो समझ में भी आयेगा। ये मायने तिलावत के बयान और अल्लाह की किताब पढ़ने का सही तरीक़ा में भी पहले बयान किये जा चुके हैं। ठहर ठहर के पढ़ने का मक़सद सिर्फ़ समझना है, इस आयत से ये साबित होता है के जो भी लोग तेज़ रफ़्तार से बिना समझे क़ुरआन पढ़ते हैं वो इस आयत के हुक्म को नहीं मान रहे बल्कि हुक्म के ख़िलाफ़ भी कर रहे हैं। अब अल्लाह तआला का फ़रमान क़ीमती और मानने के क़ाबिल है या बाद मे जो रस्म बन गयी वो मानने के क़ाबिल है?

"बाक़ायदा पढ़ो" यानी जो तरीक़ा है जो क़ायदा है, जो तिलावत की शर्तें हैं उनको याद रखते हुए पढ़ो।

अब हमने ये सीख लिया और समझ लिया किः

1. नमाज़ का असली नाम सलात है और हमे नमाज़ लफ़्ज़ छोड़कर सलात लफ़्ज़ इस्तेमाल करना चाहिए।
2. क़ुरआन में हर जगह सलात क़ायम करने का ज़िक्र है, हमें पता होना चाहिये के सलात पढ़ने और क़ायम करने में क्या फ़र्क़ है!
3. सलात को रस्मी और ज़ाहिरी तौर पर पढ़ना अलग बात है। क़ुरआन में दिये हुक्मों को जानकर, समझकर उन पर अमल करके सलात क़ायम करना अलग बात है।
4. सलात में ख़्याल का आना सलात में शिर्क है।
5. ये शिर्क सिर्फ़ अल्लाह वाले दूर कर सकते हैं, जिन्होंने क़ुरआन के हुक्मों को अमल में लाकर सलात क़ायम की या फिर उनके इल्मी वारिस जिन्हें तरीक़त का इल्म है।
6. सलात अदा करने से पहले दिल ये गवाही दे, के सलात क़ुबूल होगी और ये तभी मुमकिन है जब के हम अंदर, बाहर से पूरा पाक होकर सलात अदा करेंगे।
7. सलात मोमिन की मेराज है, इसलिए हमें सलात में अल्लाह तआला से मुलाक़ात होनी ही चाहिए।
8. दिल हाज़िर रहे बिना सलात नहीं है, इसलिए हमें पहले दिल को एक जगह हाज़िर रहने की आदत डालनी चाहिये।

9. असली सलात वो है जिसमें दिल हाज़िर रहे, कोई ख़्याल ना आये और जिसमें अल्लाह तआला से मुलाक़ात हो।
10. सलात पढ़ना अलग बात है और क़ुरआन के मुताबिक़ हमेशा सलात में रहना अलग बात है।
11. सलात पढ़ना अलग बात है सलात क़ायम करना अलग बात है। सलात का मक़सद हक़ीक़त और असलियत समझना अलग बात है।

बस अब हम सलात की हक़ीक़त को समझने की कोशिश करते हैं। देखो मेरे भाई! एक होता है वक़्त, दूसरी होती है जगह और तीसरा होता है तकब्बुर। अब इसका उल्टा क्या होगा?

वक़्त का ना होना, जगह का ना होना, तकब्बुर का ना होना इसे Timelessness — Spacelessness और Egolessness कहते हैं।

बस हक़ीक़त की सलात वो ही है जिसमें इंसान को वक़्त का, जगह का, तकब्बुर का पता ही ना चले, क्या ये फ़रमान नहीं सुना के सरकारे दो-आलम सलात में इतना लम्बा वक़्त लगाते थे के पाँव सूज जाया करते थे। ये तब ही मुमकिन है जब इंसान ग़ैब की दुनिया में पहुँच जाये और वक़्त, जगह और तकब्बुर से निकल जाना ही तो ग़ैब की दुनिया में पहुंच जाना है। ग़ैब की दुनिया में ये तीनों चीजें नहीं हैं।

बस अब अगर हमें इन तीनों चीज़ों को छोड़ देना या इनसे बाहर निकल जाना आता है तो सलात क़ायम हो सकती है, क़ुबूल हो सकती है, बाक़ी कोई कुछ भी कहता

रहे, जितनी समझ, जितना इल्म, जैसे सोहबत वैसी बातें, सब बड़े से बड़े आलिम हैं और बड़े से बड़े समझदार, लेकिन हक़ीक़त से बहुत दूर हैं।

इस ग़ुलाम को तो बस इतना सा मक़सद है कि सलात को सलात की तरह, क़ुरआन के हुक्म के मुताबिक़, अंदर बाहर से पाक होकर सब शर्तों को पूरा करते हुए क़ायम किया जाये। रस्म की तरह ना निबटाया जाये, इस ग़ुलाम ने क़ुरआन से, हदीसों से जो कुछ समझा, आपके सामने बयान कर दिया अब इस हक़ीक़त बयान करने से किसी को कोई तकलीफ़ हुई हो, या किसी की अपनी समझ के मुताबिक़ अक़ीदे को ठेस लगी हो तो ये ग़ुलाम बिना शर्त माफ़ी का तलबगार है।

❀ ❀ ❀

कुछ पसन्दीदा अशआर

तेरे सजदे कहीं तुझे काफ़िर ना कर दें "इक़बाल"
तू झुकता कहीं और है और सोचता कहीं और है

जो मैं सर बा सजदा हुआ कभी तो ज़बीं से आने लगी सदा
तेरा दिल तो सनम आशना, तुझे क्या मिलेगा नमाज़ में

तेरा इमाम बेहुज़ूर तेरी नमाज़ बे-सुरूर
ऐसी नमाज़ से गुज़र ऐसे इमाम से गुज़र

बात सजदों की नहीं, ख़ुलूसे नियत की होती है इक़बाल
अक्सर लोग ख़ाली हाथ लौट आते हैं हर नमाज़ के बाद

ꕥ

सजदों के बदले जन्नत मिले ये बात मुझे मन्ज़ूर नहीं
बिना लालच इबादत करता हूँ बन्दा हूँ तेरा मज़दूर नहीं

ꕥ

ख़ुदा नसीब करे हिन्द के इमामों को
वो सज्दा जिसमें है मिल्लत की ज़िन्दगी का पयाम

ꕥ

गिरते रहे हम सजदों में अपनी ही हसरतों की ख़ातिर इक़बाल
अगर इश्क़े ख़ुदा में गिरे होते कोई हसरत अधूरी न होती

ꕥ

सजदा-ए-इश्क़ हो तो इबादत में मज़ा आता है
ख़ाली सजदों में तो दुनिया की बसा करती है

ꕥ

लोग कहते हैं के बस फ़र्ज़ अदा करना है
ऐसा लगता है कोई क़र्ज़ अदा करना है

ꕥ

तेरी नमाज़ में बाक़ी जलाल है ना जमाल
तेरी अज़ाँ में नहीं मेरी सहर का पयाम

ꕥ

ये बता किससे मोहब्बत की जज़ा मांगेगा
सजदा ख़ालिक़ को भी इबलीस से याराना भी
हश्र में किससे अक़ीदत का सिला मांगेगा

ꕥ

दाग़े सजदा अगर तेरी पेशानी पर हुआ तो क्या
कोई ऐसा सजदा भी कर के ज़मीं पर निशान रहे

बोलूँ अगर मैं झूठ तो मर जायेगा ज़मीर
कह दूँ अगर मैं सच तो मुझे मार देंगे लोग

लूटने वाला ही मुन्सिफ़ है अदालत में ना जा
चोर तो चोर को ही इज़्ने रसाई देगा
शहरे आसेब ज़दा में सिर्फ़ आँखें ही नहीं काफ़ी
उल्टा लटकोगे तो फिर सीधा दिखाई देगा

इन सब अशआर में भी शायर ने हक़ीक़त बयान करते हुए ये ही समझाने की कोशिश की है के हम इस ख़ास इबादत को पहले क़ुरआन के मुताबिक़, सरकारे दो-आलम के फ़रमान के मुताबिक़, ना कि लोगों के कहने के मुताबिक़ सीख लें, समझ लें, असलियत, हक़ीक़त जान लें, पहले अपने अंदर का हाल और कैफ़ियत पाक करें, सारी शर्तें पूरी करते हुए सलात क़ुबूल हो, सलात को इस क़ाबिल बनाने के बाद ही सलात क़ायम करें। आमीन

अल्लाह ही बेहतर जानने वाला और तौफ़ीक़ देना वाला है।

ख़ादिमुल फ़ुक़रा बन्दाये मिस्कीन

सूफ़ी ग़यासुद्दीन क़ादरी

शुत्तारी, चिश्ती

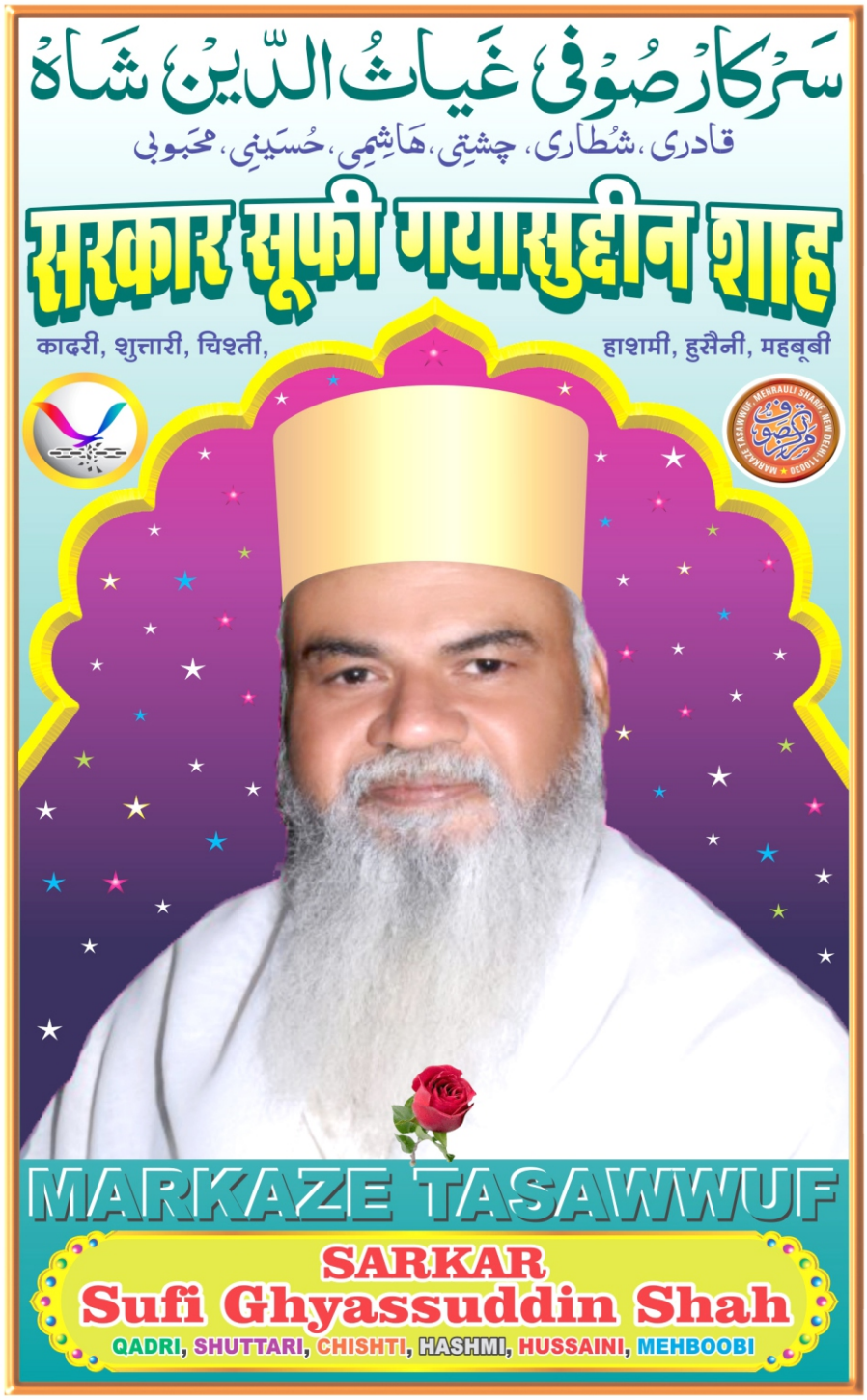

سَرکارُصُوفی غیاثُ الدّین شَاہ
قادری، شُطاری، چشتی، ہَاشِمی، حُسَینی، محبوبی
सरकार सूफी गयासुद्दीन शाह
कादरी, शुत्तारी, चिश्ती,
हाशमी, हुसैनी, महबूबी
MARKAZE TASAWWUF
SARKAR
Sufi Ghyassuddin Shah
QADRI, SHUTTARI, CHISHTI, HASHMI, HUSSAINI, MEHBOOBI

SARKAR SUFI GHYASSUDDIN SHAH
सरकार सूफ़ी गयासुद्दीन शाह
دیوان
قطب الدین
असरारे हक़ीक़ी
हक़ीक़त के राज़
राज़ों का राज़
चुभते सच
اسرار حقیقی
क्या है?
सरकार कुतबुद्दीन बा-इख्तियार काकी व तसव्वुफ़ की तालीम
कड़वी हकीकत
ईमान और मुसलमान
लोबान
राहत खास लोबान
दरगाह
राहत खास अगरबत्ती
अगरबत्ती
Rahat Khas Attar
इतर
CONCEIVED & CREATED BY:
مرکز تصوف
MARKAZE KHANQAH SHARIF Dargah Khwaja Qutbuddin Ba-Ikhtiyar Kaki (Q.S.A.)
TASAWWUF Qadriya Shuttariya Chishtiya 1011/E-1, Ward No. 7, Mehrauli, New Delhi-110030
STUDIO GRAPHICS
#: 9650222562
Sufi Naushad Qadri Shuttari Chishti